मादक प्याला

[उमर खैयाम की रुबाइयाँ]

रचयिता

साहित्य-विशारद

पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र

एम० ए०, एल्-एल्० बी०, एम० आर० ए० एस०,

फ़ेलो-नागपुर यूनिवर्सिटी

दीवान-रायगढ़-स्टेट

प्रकाशक

मेहता पब्लिशिंग हाउस

६२ सूतटोला, काशी

राज सादा २॥)]
राज सचित्र ३॥)]

[सादा २।)
[सचित्र ?)

सी० पी० सरकार के सुविख्यात होम मेम्बर
माननीय श्रीराघवेन्द्रराव महोदय
की सेवा में—

सम्मान्य सज्जन !

हिन्दी जामे में जब आया बन कर युवा वृद्ध ख़ैयाम,
लाया मंजुल मादक प्याला सुरस भरा सुखधाम ललाम।
तुमने देखा और सराहा उसका 'नक़्द धर्म' छविवान।
हुआ समर्पित 'मादक प्याला' कर कमलों में सुजन सुजान!

—बलदेवप्रसाद मिश्र

ForeWord

by

Dr. Sir Hari Singh Gour Kt.

M. A., D. Litt., D C. L.,

LL. D., Bar-at law

M L. A.

Ghiasuddin Abul Fath Omar Bin Ibrahim Al Khayam, popularly known as Omur Khayam whose Rubayyat of 500 Quatrains of which 75 selected ones were first ※ translated by Edward FitzGerald in 1859 was a native of Naishapur one of the cities of Khorasan in Persia He flourished in the 11th century A D and is said to have lived to over 85 years of age but appears to have written little else that has survived the ravages of time

---

※ 110 translated in the 2nd Ed and 101 selected for issue with the third

Omar came of a family of tentmakers, though this fact is now disputed, but was himself a mathematician, astronomer and a poet He eschewed high offices to which he was preferred by one of his earlier classmates, but lived content on an annuity granted by him and spent his long life in literary persuits He wrote a book on Algebra, *reformed* the calender and devoted his leisure to the composition of his quatrains in which he embalms his stoical and sceptic philosophy The cynical touch in most of his verses does not appear to be due to his disappointments in life, for he had no ambition beyond indulging in his own muse, and no adversity to goad him to consoling misanthropy. He was born in a garden city of Persia nurtured in its genial atmosphere and lengthened his days in the study of the stars and amused his leisure in loitering along the primrose path of poesy

But with all that his reflective genious scanned the mystery of the universe and the sordid mind of man which converted him at once into a sceptic and a cynic which drew him to wine and women as the momentary pastimes of his phantasy

Nothing is known of his private life beyond the bald facts of an eventless life, and there is nothing

to associate him with the denizens of the tavern or its haunting memories The age in which he lived was intolerant of atheists and Omar has masqued his faith by interspersing his poems with devotional songs But these appear to have been penned to suit the humour of the moment They are not the mainstring of his poetry. Upon the authority of such and other allegorical verses some critics have clothed all his muse into the attire of Sufism; but any verse howmuchsoever voluptuous can be given that turn, but there seems no more reason for assuming that the seeming Epicurian was in fact a saint

Omar's quatrains do not disclose much depth of philosophy, nor indeed much penetration of thought They rather owe their charm to their felicious phrasing and are the clean cut vignettes of contemporary life which is human life in all ages and places It is that which has given Omar immortality in his own country But his piquaint phrasing and quaint turns of expression which haunt the memory and endear his thoughts are really untranslatable in a foreign tongue The free translation of some of his stanzas by FitzGerald took the world by storm, because FitzGerald was happy in his selection of the theme

and metre which closely follows the music of the original, while at the same time it is sufficiently quaint to haunt the memory His rendering was in fact the tribute of one poet to another

Whether a similar success will attend his translator in Hindi remains to be seen. But it is a matter for gratification that it has quickened the ambition of a Hindi poet to essay the task in which I thinck he has attained considerable success Mr Baldeo prasad Mishra's quatrains are rendered in the decametre of FitzGerald Hammer and Bicknell but they lack the device of both the Rubait and FitzGerald's verse in which the harmony of the quatrain is secured by the ending line following the metre of the first two lines which gives it an added buoyancy and sweep Hindi literature is singularly deficient in secular poetry I am glad that the poets of today have at times turned their attention from God to man, for if with Pope the proper study of mankind is man the translation of Omar by Pandit Baldeo prasad augurs well for the future of Hindi poetry

Simla,
5-10-32

(Sd) H S Gour

विषय-सूची

विषय				पृ०
प्रस्तावना				१०
अस्थिरता				६८
जीवन-ज्योति	...	...	...	६९
उलट-फेर	...	...	..	७३
मनस्ताप	...	...	..	७७
अनुसधान				८१
वार्त्तालाप	...	...	...	८३
नियति चक्र	...	...	...	८६
स्वर्ग-नरक	...	...	...	९०
शुष्क ज्ञान	...	...	..	९२
मक्द धर्म	...	...	...	९४
मादकता				९९
मदिरा	...	...	..	१०१
पियो-पियो	...	...	...	१०६

विषय	पृ०
भावना	१११
आकांक्षा	११३
आह्वान	११६
प्रेम	११८
रहस्य	१२२
हे हरि !	१२५
परिशिष्ट	१२७
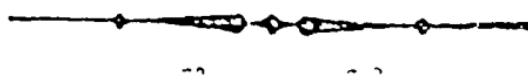
प्रस्तावना
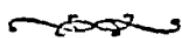
उमरख़ैयाम का नाम विश्व-विख्यात है। जिस समुन्नत साहित्य को टटोलिए, वहीं ये आठ सौ वर्ष के वृद्ध महाशय किसी-न-किसी रूप मे अपना प्याला लिए हुए उपस्थित मिलेंगे। ये फारस देश के नैशापुर नामक स्थान में पैदा हुए थे। खेमों के सुधारने का काम इनका पैतृक व्यवसाय था। इसीलिये इनका नाम खैयाम पड़ गया। ये प्रसिद्ध इमाम मुअफ्फक के शिष्य और निज़ामुलमुल्क तूसी तथा हसन इब्न सब्बाह के सहपाठी थे। तीनों मे यह शर्त हुई थी कि जो बढे, वही अपने दूसरे सहपाठियों को समुन्नति प्रदान करे। जब तूसी साहब निज़ामुलमुल्क हुए, तब अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने दोनों सहपाठियों को उच्च पद

प्रदान किए। हसन विन सब्बाह ने तो पद स्वीकार किया किंतु खैयाम महोदय सामान्य वार्षिक वृत्ति मात्र लेकर अपने गणित तथा ज्योतिष के अध्ययन में ही रत रहे। अपने जीवन काल ही में वे इन विषयो के धुरंधर आचार्य माने गए और सुलतान मलिकशाह के द्वारा पंचाङ्ग सशोधन के लिये निर्मंत्रित भी किए गए थे। अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति तथा ज्योतिष सभी मे उनने अपनी कलाम चलाई है और क़माल कर दिखाया है:—

लोग कहा करते है मैंने गणना के नव नियम निकाले।
सवत्सर ही घटा दिया है सूक्ष्म हुआ जो रहा विशाल॥—

में इन्हीं नव नियमों तथा पंचाङ्ग सशोधन की ओर इशारा किया गया है। परंतु गणित और ज्योतिष से कहीं अधिक उनने कविता के क्षेत्र मे नाम पैदा किया है। सुकवि खैयाम ने ज्योतिषाचार्य खैमय का मानो खग्रास ही कर दिया है। जिस खास छंद मे—रुबाइयों में—इन्होने कविता की है—उसमे इनके, पूर्ववर्ती और परवर्ती कवियो ने भी बहुत-कुछ लिखा है, परंतु उनमे-से किसी की कोई रचना खैयाम की बराबरी पर नहीं पहुँच पाई है। परंतु इतना होते हुए भी जान पड़ता है इनके जीवन-काल मे इनके दार्शनिक सिद्धातो और काव्य-रत्नो का समादर न हो सका। लोग इन्हे कोरा "पियक्कड़" और सामान्य "तुक्कड़" ही समझते रहे। उनने स्वतः कहा है:—

जिन प्रतिमाओं पर था मेरा आजीवन उज्ज्वल अनुराग।
इस जग मे उनने ही मेरे माथे दिया नील का दाग॥

उथले प्याले बीच डुबोया मेरा वह वर विभव अडोल।
वेच दिया कवि का उज्वल यश केवल एक गीत के मोल॥

जान पड़ता है अपनी स्पष्ट वादिता और अपने दार्शनिक सिद्धातो के कारण उन्हे जनता की कोरी उपेक्षा ही का सामना नहीं करना पड़ा है, वल्कि इससे भी अधिक उन्हे न जाने कितनी विषम अपमान-यन्त्रणाएँ भी सहनी पड़ी होगी। लोगो ने उनकी राह मे अनेक काँटे वोए होगे और उनके शात जीवन को एकदम अशात और निराशापूर्ण वना दिया होगा। इस तरह गणित की गाथा छोड़ कविता की कथा में पड़ने से उन्हे जो मर्म व्यथा सहनी पड़ी है उसका वर्णन उन्हीं के मुँह से सुनिए:—

सदा सया करता था खेमे रुचिर ज्ञान के जो ैयाम।
गिरा वही दुख के कड़ाह में जलाकर तथा हुआ बेकाम॥
लीं उखाड़ मेखें अदृष्ट ने जीवन के सब रस्से खोल।
आशा के दलाल ने उसको वेंच दिया कौड़ी के मोल॥

कितने दुःखपूर्ण उद्गार है! कैसी निराशा टपक रही है! इन पंक्तियों से उनके हृदय की कितनी गहरी पीड़ा का वोध होता है! परंतु क्या खैयाम सरीखा पक्का दार्शनिक इन यंत्रणाओं से घवरा उठेगा? कभी नहीं। वह तो जानता है कि यह भी उसी मालिक की मर्जी है। फिर उसकी इच्छा के अनुसार चलाने में लज्जा क्यों?

सव ही को तो दिया ईश ने विषमदशा-मय जीवनदान।
सवको करना ही पड़ता है उस कड़वी मदिरा का पान॥

सब बेबस है, बिरची बिभु ने सब ही से त्रुटियाँ भरपूर।
फिर मैं लज्जा से क्यो कर दूँ अपनी कड़वी मदिरा दूर॥

इतना ही नहीं वे इससे भी एक कदम आगे बढ जाते हैं। वे अपनी दु ख और अपनी त्रुटियों का अपने जीवन का गौरव मानते हैं। इसलिये उन्हे दूर करने की चेष्टा मे पड़कर ईश्वर से प्रार्थना करना अथवा उसके आगे पश्चात्ताप के आँसू बहाना खैयाम को बिलकुल अभीष्ट नहीं।

दुख ही है प्रेमी का गौरव, त्रुटि ही है जीवन का गर्व।
फिर क्यो पश्चाताप! अरे मैं "तोबा" कर न बनूंगा खर्व॥

दुख का तो उन्होंने जी खोलकर स्वागत करने का उपदेश दिया है:—

सुखी हृदय वह है जिसने है सहा प्रिया का अत्याचार।
सुखी वही मस्तक है जो है हुआ प्रेमिका-पथ पर क्षार॥
दुख ही जो भेजा उसने तो कर वह ही सुख से स्वीकार।
प्रेमी को सुखकर ही होता सदा प्रियाप्रेषित उपहार॥

× × × × ×

मिले प्रिया को गाल गुलाबी नयन सलोने अधर सहास।
तो प्रेमी ने भी तो पाये विरह व्यथाओ के आवास॥
खाली हाथ न लौटे जग मे जब हमने छोड़ा विधिद्वार।
दुख ही सही किंतु हमने भी पाया है कुछ तो उपहार॥

परंतु उनका यही भाव सब काल के लिये स्थिर नहीं रहता। वे दूसरे स्थान पर कहने लगते है —

विषम धरा पर तुमने भेजे निर्बल मनुजों के समुदाय।
तथा पुण्य के साथ तुम्हीं ने रचा पाप को भी तो हाय॥
हुए पतित जब वे तो उनको करके क्षमा प्रशांति निधान।
हरलो वह अनुताप कारिणी सकल कालिमा, हे भगवान!

(पाठक देखेंगे कि यह प्रार्थना भी कितनी गौरवपूर्ण है। जब ईश्वर ने ही पतन कराया, तो क्षमा करके कालिमा हरना भी उसे लाज़िम है।)

ठीक यही हाल उनके अन्य दार्शनिक सिद्धांतों का भी है। वे यह मानते हैं कि विधि-विधान अटल है और इसलिये हमें अपनी-अपनी स्थितियों पर सर्वरूपेण संतोष करना चाहिए, परंतु वे अपनी इच्छा भी प्रकट करते जाते हैं कि हम लोग यदि किसी प्रकार इस विधि-विधान में कुछ परिवर्त्तन कर सकते, तो कितना उत्तम होता।

लिखती ही जाती है उँगली बढ़ती ही जाती अविराम।
लाखों यत्नों से भी उसकी हो सकती कुछ रोक-न-थाम॥
करो चाटुकारी चाहे तुम चाहे अश्रुनदी दो डाल।
किंतु न थोड़ा भी मिट सकता निष्ठुर विधि का लेख कराल॥

× × × × ×

जिसके नीचे उपज-उपज कर हम सब बनते धूल निदान।
उस टी उलटे पान-पात्र सम नभ-को मन से मान महान॥
क्यों तुम उससे माँग रहे हो रक्षा की भिक्षा अविराम।
घूम रहा वह भी तो बेबस हम तुम ही सा आठोयाम॥

इन छंदो को जरा नीचे के छंदो से मिलाकर देखिए:—

देवदूत क्या कोई आकर देगा मुझ दुखिया का साथ।
मेट सकेगा अंक भाल के रोक सकेगा विधि का हाथ॥
क्या है ऐसी शक्ति किसी मे उलट सके प्रारब्ध महान।
कुछ भी तो परिवर्तित कर दे विधि का वैसा विषम विधान॥

× × × × ×

प्रियवर! क्या हम तुम दोनो मिल कर सकते यह नहीं उपाय।
जिससे वह विनष्ट ही कर दे इस दुखमय जग का समुदाय॥
और बनादे फिर से ऐसा नूतन सुषमा-मय संसार।
जिसपर बरबस ही बँध जावे हम सबके हृदयो का प्यार॥

इसी प्रकार मानवी प्रयत्नो के विषय मे उनका कथन है। वे मनुष्य को ईश्वर के हाथ की कठपुतली मानते हैं, उस कुम्हार के हाथ का बनाया हुआ एक मिट्टी का घड़ा मात्र मानते है, उसके इशारे पर चलनेवाले सिनेमा के छाया-चित्र मानते हैं और उन मनुष्यों द्वारा की गई हुई 'इस' 'उस' (लोक-परलोक आदि) की चिंताओं की हँसी उड़ाया करते है। परंतु वे ही एक स्थान पर कहते है:—

झुँझला कर लीं मैंने संयम शपथ न जाने कितनी बार।
किंतु नशे ही मे तो था मैं, जब आए वे शपथ विचार॥
बस बसंत ने जब फैलाया अपना मादक सुमन प्रताप।
एक फूँक ही में उड़ भागे क्षीण शपथ कृश पश्चाताप॥

हृदय ने स्वतः प्रयत्नवान् होना चाहा परंतु अपनी कमज़ोरी के कारण वह सफल न हो सका और संसार के चक्कर मे आगिरा।

खैयाम के ऐसे-ऐसे विरोधाभास ही उनके वर्ण्य विषय की सम्यक् पुष्टि करते हैं। वे अविश्वास भय और दुःख के दानवों से वचना चाहते थे, वे जगत् को अपने ही ढंग का बनाना चाहते थे, और अपने उत्कर्ष के लिये प्रयत्नवान् भी हुए थे, परंतु जब उन्हे कभी सफलता मिल ही न सकी तब उनने अपना दृष्टिकोण बदला और बहुत विचार के बाद यह स्थिर किया कि विधि-विधान एकदम अटल है और उसके आगे मनुष्य का प्रयत्न कोई चीज़ नहीं। ईश्वर जो कुछ करावे सो वह करता जाय और परिणाम में सुख या दुःख जो मिलें, उन्हे संतोषपूर्वक भोगता जाय। यह निश्चय हो जाने पर फिर संयम-शपथ की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। संसार के सुख और ऐश्वर्यों को भी वह ईश्वर की देनगी समझकर आनंद-पूर्वक भोगता है और विषम यंत्रणाओं को भी उसी का प्रसाद समझकर संतोपपूर्वक सहता जाता है। इस भावनावाले मनुष्य के लिये नरक भी स्वर्ग के समान है और इस भावना से हीन व्यक्ति के लिये सबसे बढ़िया स्वर्ग भी असंतोष का कारण और प्रत्यक्ष नरक से बढ़कर बन सकता है। वही बात एक दृष्टिकोण से सत्य तो दूसरे से मिथ्या बन सकती है।

एक सूक्ष्म रेखा ही करती सत्य और मिथ्या का भाग।
कहो कहाँ किस ओर रखोगे, अपने जीवन का अनुराग॥

दूसरे लोग भले ही वैराग्य और परलोक को सत्य मानकर उसी ओर अपने जीवन का अनुराग रखें परंतु खैयाम तो इसी संसार को सत्य मानकर अपने जीवन का अनुराग यहीं जमाए

हुए है। हाँ, वस बात इतनी है कि अपना दृष्टिकोण उनने वदल दिया है। संसार की तह तक पैठ कर वे यह देख चुके हैं कि—

सब रूपो मे छिपा हुआ है वही दुःख भंजन जगदीश।
वही वना जड़ वह ही चेतन, वही रंक वह ही अवनीश॥
राजा रंक और जड़ चेतन, होगे विकृत विनष्ट निदान।
किंतु रहेगा वर्त्तमान ही वह त्रिकाल मे एक समान॥

वे यह जानते हैं कि:—

जहाँ भीम, अर्जुन रहते थे आज वहाँ हैं वसे शृगाल।
विक्रम के वैभव पर नाचा करते है अब व्याल कराल॥
गजनी की समाधि अवनी पर गधे विचरते है स्वच्छंद।
फिर भी उनकी ठोकर खाकर नींद न होती उसकी मंद॥

इसलिये वे जो कुछ साँसारिक सुख भोगते है वह त्याग की भावना लिये हुए भोगते है।* असंतोष और चिंताओ को चूर कर सदैव मस्त रहते है और अपने जीवन को ईश्वर की धरोहर—उसका दिया हुआ ऋण-मानकर जव वह माँगे तव सुखपूर्वक लौटा देने के लिये सदैव तैयार रहते हैं।

मस्त रहूँगा मदिरा मे बस, जव तक हैं इस तन मे प्रान।
यह जीवन—यह ईश धरोहर—लौटा दूँगा फिर सुख मान॥

उनके विचारो के पास धार्मिक वंधन जरा भी नहीं फटकने पाए

---

* "तेन त्यक्तेन भुञ्जी था" वाला उपनिषद का वाक्य इस प्रसग मे कितनी अच्छी तरह लागू होता है?

हैं। वे सब को ही "मनमानी" करने की सलाह देते है। स्वर्ग-नरक के विषय मे उनके विचार है :—

"इच्छाओ की पूर्ति" यही तो कहलाता है स्वर्ग ललाम।
तथा "असंतोषो की ज्वाला" है बस नरक इसी का नाम॥

इसीलिये वे कहते है मनमानी करो और असंतोष को पास न फटकने दो। बस जीवन साफल्य निश्चित है। यदि मन हो तो 'Eat drink and be merry" (खाओ, पियो और मौज उड़ाओ) वाला सिद्धात ग्रहण कर लो और यदि मन हो तो इसे दूर वहाकर पूजा-पाठ वाला सिद्धात ग्रहण कर लो। परंतु जो कुछ करो मन लगा कर करो, मन को तरसा कर न करो। इसी विषय को जोरदार शब्दों मे वे कहते है :—

वृथा नरक का भय है देखे किसने वे सब नरक-निवास।
तू तो मदिरा मदिराक्षी की लख ले मन भर रूप उजास॥
देख विकच पाटल की शोभा आकर, छोड़ नरक का ध्यान।
अरे, जहाँ प्रेमी हों ऐसा नरक स्वर्ग से बढ़कर मान॥

× × × × ×

अन्न-वस्त्र तक ही परिमित रख अपने वे सब यत्न महान।
मत खो यह अमूल्य जीवन तू कर ले सुख से मदिरा पान॥
नरक गमन निश्चित है तो बस वृथा स्वर्ग के हेतु प्रयास।
लिखा हुआ है स्वर्ग गमन यदि तो फिर वृथा नरक का त्रास॥

× × × × ×

चाहे जो कुछ कहो करूंगा मैं न कभी मदिरा का त्याग।
होता है निषिद्ध पथ पर ही मानव जीवन का अनुराग॥
पुण्यवान के लिये कभी क्या होता है करुणा संचार।
दया पापियों ही के हित है, फिर क्यो इतना सोच-विचार॥

× × × × ×

परंतु इस "मनमानी" मे तभी सच्चा सुख मिल सकता है, जब मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थ ही को सब कुछ न समझ ले। यदि उसने सब-कुछ स्वत. समेटना चाहा और सब रुचिकर वस्तुओं पर अटल आसक्ति जमाना चाहा, तो उसकी यह 'मनमानी' ही उसके लिये पक्की परेशानी हो जावेगी। 'मनमानी' वालो को खैयाम का यह पद सदैव स्मरण रखना चाहिए.—

बंधन रख न किसी का प्यारे बन आसक्तिहीन मतिमान।
असंतोष को दूर बहा दे त्याग झूठ के सकल विधान॥
मनमानी कर, किंतु सता मत किसी जीव को किसी प्रकार।
बस, फिर तेरे लिये खुले हैं, निश्चय शात स्वर्ग के द्वार॥

जिन लोगो मे ये गुण हैं, वे भोगी होकर भी योगी हैं, सांसारिक होकर भी जीवन्मुक्त हैं, ऐय्याश कहाए जाने पर भी परम त्यागी हैं। वे ही परम धार्मिक हैं और उन्होने ही सत्य और मिथ्या के सच्चे रहस्य को समझा है।

खैयाम का यही दार्शनिक प्रत्यक्षवाद है और अपनी चुटीली उक्तियों द्वारा इसी सिद्धात को उनने पदपद पर व्यक्त किया है। उनका सबसे प्रधान लक्ष्य वर्तमान पर है। भूतकाल की त्रुटियाँ

आदि तो सब ईश्वर ही की ओर से मिली थीं—सब प्रारब्ध परवश थीं—और भविष्य एक दम अज्ञेय है ही। फिर मृत अतीत के पश्चाताप मे और अव्यक्त भविष्यत् की आधारहीन आशा में हम अपना वर्तमान क्यों खो दें। वर्तमान का सच्चा सदुपयोग करना ही तो सच्चा दार्शनिक सिद्धांत है। यही उनका नक्द धर्म है। उधार पर प्यार करना—स्वर्ग—नरक के फेर मे पड़कर इस वर्तमान जीवन को ठुकरा देना—एकदम भ्रमपूर्ण है।

कोई बने हुए है व्याकुल पाने को जगती के ताज।
चाह रहे है कोई पाना अमरपुरी के सुखकर साज॥—
छोड़! छोड़! उनकी बातें तू नक्द माल का कर सत्कार।
यही बुद्धिमानी कहती है छलनामय उधार का प्यार॥

धार्मिक जंजाल रूपी कुएँ और पाशव जीवन रूपी खाईं से बचाते हुए अपने नक्द धर्म की उनने कैसी सुगम पगडंडी निकाली है कि देखते ही बनता है।

यह सिद्धांत आसानी से ही नहीं निश्चित कर दिया गया। ज्योतिषी होने के कारण उन्होंने दूर-दूर तक के ग्रह-उपग्रहों पर दृष्टि जमाकर स्वर्ग और नरक का अनुसंधान किया, गणितज्ञ होने के कारण उन्होंने स्थिर नियमों से अस्ति-नास्ति का विशाल भेद जाँचा और दार्शनिक होने के कारण उन्होंने आकाश-पाताल की झाँझरी ओट छेदकर मायापति के पास भी पहुँचने का दुस्साहस किया। तब कहीं जाकर उनने इस दार्शनिक प्रत्यक्षवाद रूपी ज्ञान-ज्योति के दर्शन पाए। इस अवस्था का वर्णन उन्होंने

बड़े ही भावपूर्ण और हृदयग्राही शब्दों में किया है। आशा है यहाँ उन छंदो का कुछ विस्तारपूर्वक उल्लेख कर देना पाठकों को अरुचिकर न होगा। वे कहते है —

यौवन मे उत्साहित होकर मैंने देखे संत अनेक।
और ध्यान से उनके प्रवचन सुने तर्क-संयुक्त सविवेक॥
किंतु न कुछ भी समझ सका मैं मिली न इस रहस्य की थाह।
गया वहाँ जिन पैरों, लौटा उनही पैरो उसही राह॥

× × × × ×

उनकी संगति से जो मैंने बोए ज्ञान बीज अभिराम।
तथा बढ़ाता रहा जिन्हें मैं सहकर वर्षा, सरदी, घाम॥
उन्हें पकाकर मैंने पाया केवल यह ही शस्य महान।
"आया जल प्रवाह-सा जग में जाऊँगा अब पवन समान॥

× × × × ×

क्या जाने कैसे प्रदेश से, क्या जाने क्यों, किसके जोर।
ध्येयहीन जल के-प्रवाह-सा बहता आया हूँ इस ओर॥
और छोड़कर मृगतृष्णा-सी इस ऊसर अवनी के स्थान।
बहा जा रहा हूँ क्या जाने कहाँ आज मैं पवन-समान॥

× × × × ×

भूमंडल से उठकर पहुँचा मैं तारा- मंडल के पास।
और वहाँ भी पाया सबसे ऊँचे सिंहासन पर वास॥
सुलझाई मैंने बहुतेरी ज्योतिष्पथ वरिष्ठ की गाँठ।
पर उलझी ही रही आजतक मनुजों के अदृष्ट की गाँठ॥

× × × × ×

कैसा है यह द्वार कि जिसकी कुंजी पा न सका मैं मित्र !
कैसा है यह पर्दा जिसने छिपा दिया वह पार विचित्र ॥
मेरी और तुम्हारी चर्चा रही यहाँ कुछ थोड़ी देर ।
फिर " मैं, तुम " अंतर्हित होकर केवल बने धूल के ढेर ॥

× × × × ×

मैंने धरती से यह पूछा पर वह हुई निरुत्तर आप ।
गया उदधि तट पर वह तो था श्यामविरह में श्याम अमाप ॥
तब आँखें ऊँची कर मैंने आशा से देखा आकाश ।
पर विकसित नभ पर भी पाया मैंने दिवस निशा का पाश ॥

× × × × ×

तब आकुल हो मेरे दोनों हाथ उठे उस ओर निदान ।
जिधर छिपे थे जग संचालक माया का रच के व्यवधान ॥
तमोमयी रजनी में मैंने चाहा देखूँ ज्योति-कलाप ।
गगन गिरा ने कहा "मूर्ख ! तू देख उसे अपने में आप ॥"

× × × × ×

बस ! फिर मैं झटपट पहुँचा इस मिट्टी के प्याले के पास ।
और इसी ने शीघ्र बुझाई जीवन-तत्व-ज्ञान की प्यास ॥
कोमल स्वर से बोला यह "बस, पियो-पियो जबतक हो प्रान ।
मर कर फिर न फिरोगे ऐसे, इस अवनी पर, हे मतिमान ॥"

बस, फिर तो बूढ़े खैयाम ने इसी नक्द-धर्म का संदेश डंके की चोट से संसार को सुनाना प्रारंभ कर दिया। वे कहते है :—

जीवन-ज्योति न खो तू प्यारे ! 'इस' 'उस' की उलझन को छोड़
व्यर्थ वितंडावादो से तू झटपट अब अपना मुँह मोड़ ॥
मादक अँगूरो को लेकर, हँस-हँस कर, कर हृदय विकास ।
कुफलो की झूठी आशा मे बनता है क्यो मित्र ! उदास !

× × × × ×

नव वसंत के प्रबल अनल मे जलजाने दो पश्चात्ताप ।
आओ आगे बढ़ो प्रेम से प्याले मे भर सुरस अमाप ॥
देखो, उड़ा जा रहा है यह गगनविहारी समय विहंग ।
शीघ्र ! शीघ्र ! तुम करो शीघ्रता सदा क्षणिक है इसका संग ॥

× × × × ×

मस्ती मे उछल-उछल कर उनके मुँह से बरबस निकला पड़ता है :—

प्रिये ! प्रिये ! फिरसे भरदे तू प्याले में वह सुरस अमाप ।
बह जावें सब भय भविष्य के सब अतीत के पश्चाताप ॥

× × × × ×

और अंत में तो जगत् के उपहास की भी पर्वाह न कर वे कहते है :—

वृद्धा बुद्धि सखी को मैंने अब तो रख छोड़ा है दूर ।
मदिरा ही से अब तो मैंने नाता जोड़ा है भर पूर ॥
कहिए कैसी है यह हिम्मत कहिए कैसी है यह चाह ।
जिसे देखना हो सो देखे बूढ़े का यह नवल विवाह ॥

× × × × ×

मदिरा की ओर यह तन्मयता केवल नक्द धर्म की महता व्यक्त करने के ही लिए प्रकट की गई है। खैयाम की मदिरा केवल सामान्य अंगूरी शराब ही नहीं है। पाटल (गुलाब) को यही मदिरा पीने का उपदेश दिया जाता है।* जपा के पुष्प उसी मदिरा की आशा में मुँह ऊँचा किए रहते है (०)। बडे-बड़े ज्ञानी ध्यानी आदि तथा बड़े बड़े प्रेमाधार प्रमुद-आगार आदि इसी मदिरा के पीने वाले बताए गए है। (देखिये छंद नं० ४) स्वयं जीव भी—

मदिरामयी महामाया के पान-पात्र से आ इस ठौर।
हम तुम सम बहु चेतन बुद् बुद् गिरे, गिरेंगे कितने और॥

बताए गए है। जब जीव भी उस मदिरा का एक बुद्बुद् है तो समझ लीजिए कि वह मदिरा क्या होगी। अपने यहाँ उपनिषदों में कहा है "आनन्दादेव ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते"। कई पाश्चात्य दार्शनिक कहते है कि ब्रह्म के अव्यय प्रेम ही से जीवों की सृष्टि हुई है। भक्तों की भावना है कि उस लीलामय ने लीला ही के लिए संसार बनाया है। बस, उसी आनंद, उसी प्रेम, उसी लीला का भाव व्यक्त करने के लिए 'मदिरा' शब्द का प्रयोग किया गया है। अनुराग में लाली है, नशा है, मदिरा में भी वही बात है। आनंद में मस्ती है, मदिरा में भी वही है। लीला में

---

* मंजुवादिनी बुलबुल कहती पाटल से 'प्रियतम! हृदयेश!
* * * *
मदिरा, मदिरा आज गुलाबी मदिरा का तुम करलो पान॥
* * * * *

(०) ऊषा सुखकर अरुणोदय में जैसे रुचिर जपा के फूल।
वह स्वर्गीय मधुर मादक रस चाहा करते हैं सुखमूल॥

भी बंधन राहित्य है, मदिरा में भी वही विषय विद्यमान है। यही वह 'अमल' है, जिसका उल्लेख केवल फारस के सूफ़ी कवियों ने ही नहीं वरन् भारतीय संत कवियो ने भी किया है। इसी मदिरा के लिये खैयाम साहब कहते हैं :—

पियो क्योंकि * यह मदिरा ही तो है अविनश्वर जीवन मित्र।
पियो, क्योंकि यह ही है निश्चय जीवन-सुख सर्वस्व विचित्र॥
चिंताओं की परम दाहिका यह ही तो है अग्नि महान।
दुःख अनल के हेतु यही है किंतु सुधामय सलिल समान॥

दुःख और यंत्रणाओ के लिये भी उन्हो ने मदिरा शब्द* का प्रयोग किया है तथा मृत्यु के लिए भी वे 'श्याम सुरस' की बात कह उठाते हैं (०) परंतु चाहे दुःख हो चाहे निराशा हो चाहे यंत्रणाएँ हों चाहे जीवन हो और चाहे मृत्यु ही हो, आखिर हैं तो सब उस नटवर की ही लीलाएँ। इसलिये इन सभी विषयो के लिये मदिरा शब्द प्रयुक्त होना सर्वथा ही उपयुक्त है।

---

* सबही को दो दिया ईश ने विषम दशामय जीवन दान।
सबको करना ही पड़ता है उस कड़वी मदिरा का पान॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

(०) तब फिर जब अंतिम अवसर पर पाकर तुझको सरिता तीर।
श्यामसुरस प्याले में भरकर, देगा कालदूत गंभीर॥
और बुलावेगा आत्मा को ओठों पर जब वह चुपचाप।
पीना ही होगा तुझको तब उसका वह मादक रस आप॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

कई लोगों ने इन्हे भौतिक मदिरा-प्रेमी भी माना है। संभव है वे शराबी रहे भी हो अन्यथा उज्वल गलास में भरी हुई लाल मदिरा के लिये :—

है खदान में मानिक या है तन में जीवन-ज्योति ललाम।
या आँसू के भीतर पैठा व्यथित हृदय शोणित अभिराम॥
शरद जुन्हाई में रवि आया या जल बीच गुलाब रसाल।
उज्वल प्याले के भीतर है इस प्रकार की मदिरा लाल॥

ऐसी अच्छी-अच्छी उपमाएँ और उत्प्रेक्षाए करने की कोई आवश्यकता न थी। अपने अंत समय के लिये भी उन्होंने कैसी सुंदर आकांक्षा प्रकट की है। वे कहते है :—

अंत समय जल के बदले बस, देना वह मादक रस मित्र।
और उसी रस से धो देना मेरा मृतक शरीर विचित्र॥
हरे द्रुमो की ललित लताओं से लपेट कर फिर सविनोद।
रख देना उसको प्रशांतिमय किसी ललित उपवन की गोद॥

× × × × ×

प्रगटेंगी मेरी समाधि से द्राक्षावल्लरियाँ सुविशाल।
तानेंगी वितान ही-सा जो अपना हृदय-विमोहक जाल॥
रागहीन ज्ञानी भी कोई यदि जा पहुँचेंगे उस ओर।
तो उनकी छवि से विमुग्ध बन होंगे निश्चय प्रमुद विभोर॥

× × × × ×

परंतु इस भौतिक मदिरा के साथ खैयाम फिर से दिव्य मदिरा

की चर्चा छेड़ देते है, जिससे यह कहना कठिन हो जाता है कि वे वास्तव में भौतिक मदिरा ही के प्रेमी थे। मुलाहिज़ा कीजिए:—

उसी चंद्र-सी चंद्रमुखी ! तुम जब नभ से आकर सविलास।
नए अतिथि को सुरस पिलाने पहुँचोगी उपवन के पास॥
मिले तुम्हे जब रुचिर धरा वह जहाँ बना मैं धूल निदान।
एक सरस प्याले की धारा वहाँ गिरा देना मुसमान॥

× × × × ×

वह जो कुछ हो, परंतु इतना तो निश्चय है कि खैयाम भौतिक मदिरा—शराब—से बढ़कर आध्यात्मिक मदिरा—शुद्ध अनुराग—के प्रेमी थे, अन्यथा वे 'उथले प्याले बीच डुबोया मेरा वह वर विभव अडोल' कभी न कहते और सामान्य मदिरा को वह आदर कभी न देते, जो निम्न पद में दिया गया है:—

स्थिर नियमों से मैंने जाँचा 'अस्ति' 'नास्ति' का भेद विशाल।
तर्क कसौटी पर कस देखा यह आकाश और पाताल॥
किंतु दिखाई पड़ा कहीं यदि गहरे गोते का सुस्थान।
तो बस था कुछ और न, वह था मदिरा ही का पात्र महान॥

× × × × ×

और साथ ही यह न कहते कि:—

नहीं भोग का रोग मुझे है तथा न रसना रस की चाह।
मानव धर्म भंग करने का भी कुछ नही यहाँ उत्साह॥
मैं हूँ उस मदिरा का प्रेमी जिसकी शुभ मादक रस धार।
मुझमें आकर मुझे मिटा दे, सरसा दे आनंद अपार॥

खैयाम ने मदिरा के साथ-ही-साथ-मदिराची की ओर भी अपनी रुचि दिखाई है। मदिराची का सामान्य अर्थ तो सभी को विदित है; परंतु आध्यात्मिक दृष्टि वाले पाठको को इसका विशिष्ट अर्थ समझते भी देर न लगेगी। मदिराची के केशपाश में ये अपनी अँगुलियाँ फँसा लेना चाहते हैं * चंद्रमुखी से एक प्याला मदिरा की याचना करते हैं (०) उस अनंत यौवना का एकात में कल संगीत सुनना चाहते है †, उसे ही उनने मदिरामयी महामाया भी कह डाला है।(१) तब क्या वह विश्वरूपा प्रकृति के अतिरिक्त और भी कोई वस्तु हो सकती है। हमलोग अनुराग का सबक प्रकृति ही से तो सीखते हैं। वह अनंतयौवना प्रकृति ही तो माता, पत्नी, पुत्री इत्यादि के रूप धर कर हमारे सामने आया करती है। वही तो रुचिर प्रभात, कोमल कुसुम और मादक राग का रूप रखकर हमारे सामने उपस्थित हुआ करती है। चंद्र ही तो उसका मुख है और संसार की समस्त बाँकी झाकियाँ ही तो उस की मदिरा

---

* तू तो बस बस मदिरावाली मदिराची का करले ध्यान।
और अंगुलियाँ उलझा ले तू उसके केशों में मतिमान!

* * * * *

(०) एक सरस प्याले की धारा वहाँ गिरा देना सुखमान।

* * * * *

† और वहाँ उस निर्जन में बस मदिराक्षी हो करती गान॥

* * * * *

(१) 'मदिरामयी महामाया के पान पात्र से आ इस ठौर'।

भरी आँखें ह। प्रकृति का प्रेम वडा स्वार्थहीन प्रेम माना गया है
उसे परमेश्वर के प्रेम का दूसरा नाम ही कहना चाहिए। क्योंकि
आखिर प्रकृति के इस झीने परदे के पीछे वही एक अविनश्वर सत्त
तो विद्यमान है। प्रकृति में भी मानवी रूप (स्त्री आदि) की
ओर प्रेम रखने से तो कुछ प्रतिफल की आशा भी हो सकती है
परंतु नैसर्गिक सुषमा की ओर अपना अनुराग बढ़ाने से अपना प्रेम
आप-ही-आप विशुद्ध होता जाता है और यह विशुद्ध प्रेम चरित्र को
निर्मल बनाकर मनुष्य को मुक्ति तक प्रदान करा सकता है। खैयाम
की यह स्पष्ट घोषणा है कि:—

कुसुम कहाँ है? भरे कामना की कुंजो में कंटक जाल।
तज दो भोग-रोग के सम ही, यदि वाछित हो शाति रसाल॥

× × × × ×

पुत्र कलत्र मोह तुम त्यागो करदो जग के बंधन चूर्ण।
कैसे बढ़ सकते हो जबतक चूर्ण न होगे बंधन पूर्ण॥

× × × × ×

वे नैसर्गिक सौंदर्य के सच्चे प्रेमी थे। गुलाब को फूलते हुए
देखकर वे कहते हैं :—

मंजुल वाणी से कहता है खिलकर यह गुलाब का फूल।
हँसता हुआ प्रगट होता हूँ मैं जंग मे उपवन के कूल॥
और प्रगट होकर झट अपनी थैली रुचिर रेशमी खोल।
उपवन मे बिखरा देता हूँ सुंदरता की निधि अनमोल॥

× × × × ×

विकसित होकर बोला पाटल "मै ही हूँ प्रेमी मंसूर।
मेरे मानिक से मुखपर है मढ़ा हुवा सोना भरपूर"॥
मैंने कहा "तभी मानूँगा देखूँ जब कुछ चिह्न विशेप"।
उसने कहा "देखले मेरा शीर्ण कलेवर शोणित वेश"॥

× × × × ×

प्रभात के सौदर्य पर सूर्य को संबोधित करते हुए वे कहते हैं:—

दिया प्रकृति ने इस प्रभात मे तुम्हे व्योम सिंहासन आज।
जगत् प्रभाकर! और सजाए कनक चरण अश्वो के साज॥
इस अवनी पर ज्योंही पड़ती उन घोड़ो की पहिली टाप।
सोना तुरत बरस पड़ता है, बिछ जाती है चाँदी आप॥

× × × × ×

सौदर्य की वस्तुओं को विलीन होते देख वे व्यथा भरी वाणी से कहते हैं —

उड जाता है यह वसंत भी लेकर अपने ललित गुलाब।
अहो! वंद क्यों हो जाती है यौवन की वह रुचिर किताब॥
नव उमंग मय बुलबुल जिसने अभी सुनाया था कलगान।
आई यहाँ कहाँ से, गाकर हुई कहाँ अब अन्तर्धान॥

× × × × ×

क्यो रज की ढेरी पर विधि ने, बिखराई छवि राशि महान।
देह त्याग कर जाना ही था, तो आए ही थे क्यों प्राण॥

× × × × ×

कहा जाता है कि उनने अंत समय के लिये यह इच्छा की

थी कि उनकी कब्र ऐसी जगह् बने, जहाँ उत्तरी वायु गुलाब के फूलों को लाकर बिखेर दिया करे। और यह् भी कहा जाता है कि ईश्वर ने इस प्राकृतिक सौंदर्य के अनन्य प्रेमी की बात सुन भी ली। क्योंकि उनकी समाधि यथार्थ ही एक उद्यान के किनारे बन गई थी और उस उद्यान के वृक्ष उस समाधि के ऊपर अपनी शाखाओं से इतनी पुष्प-वर्षा कर चुके थे कि उस समाधि का पत्थर पूरा ढँक गया था।

दार्शनिक प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत को व्यक्त करनेवाले छाया-वाद (Mystic) कवि के लिये मदिरा और मदिराक्षी शब्दों का प्रयोग करना आवश्यक था। मदिरा शब्द मे अंगूरी शराब से लेकर ईश्वरीय अनुराग तक का अर्थ समा गया और इस प्रकार 'मदिराक्षी' मे सामान्य नायिका से लेकर अनन्त यौवना विश्वरूपा (प्रकृति) की अविनश्वर और अनासक्तिमयी सुषमा तक का भाव आ गया। जो पाठक जिस मानसिक स्थिति के हों, वे इस अमर कवि के शब्दों का वैसा ही अर्थ मान सकते हैं। ख़ैयाम तो ललकार-ललकार कर कह रहे है :—

वृथा नरक का भय है, देखे किसने वे सब नरक निवास।
तू तो मदिरा मदिराक्षी की लख ले मनभर रूप उजास॥

अब जिसकी इच्छा हो वह सुरा और सुंदरी की रूप-उजास ही को अपना ध्येय बना ले और जो चाहे वह विश्वप्रेम और नैसर्गिक सौंदर्य ही की छटा का मनभर अवलोकन कर ले। कुछ लोग कहते हैं कि ख़ैयाम ने इधर तो धार्मिक आचार-विचार से

जकड़े हुए मुल्लाओ को भी बेतरह फटकारा है और उधर आदर्श ज्ञानी बननेवाले सूफियो को भी बुरी तरह झाड़ा है तथा उन दोनों के सिद्धांतो को दूर उड़ाकर सुरा और सुंदरी ही को अपने जीवन का सच्चा ध्येय बनाया है। मैं ऐसा नहीं समझता। मुझे तो वे भी एक सच्चे सूफी कवि के रूप मे दिखाई पड़ते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि उनने सुरा और सुंदरी प्रेमी के लिये भी पूरी स्वतंत्रा दे रखी है। वे एक ओर तो दार्शनिक प्रश्न उठाते हुए कहते हैं —

यह सत्तासागर आया है किस अदृश्य का तजकर पार।
विदित कभी होगा क्या हमको अति रहस्यमय यह व्यापार॥
हा! किसदिन कबतक होवेगा इस अनंत पथ का अवसान।
हा! यदि कभी कहीं मिल सकता, जीवनको विश्रान्ति स्थान॥

× × × × ×

दूसरी ओर स्वयं कह उठते हैं .—

मिला न कोई लाभ ज्ञान से देखे मस्त सदा मतिमन्द।
कर दो तुम भी मादक रस से अपना विषम ज्ञान पथ बंद॥
मस्त मूर्खता ही मे हूँ मैं करके दूर ज्ञान का छोर।
संभव है इससे ही कर दें, विभु मुझपर करुणा की कोर॥

× × × × ×

वे यदि इधर ज्ञान को फटकारते हुए लिखते है .—

ज्ञानी कहलाने वाले हैं इस जग में कुछ गर्दभराज।
उनकी संगति मे जाकर के तू भी बन जा गर्दभ आज॥

जग के जीवों में कुछ ऐसा लगा सभ्यता का है रोग।
लोकलीक जिसने त्यागी है गधा उसे कहते है लोग॥

× × × × ×

तथा साथ ही मदिरा और मदिराक्षी के सेवन के लिये प्रमाण पेश करते हुए बताते हैं —

कहते हो मैं मदिरा त्यागूँ! तजदूँ मदिराक्षी का ध्यान?
तो फिर विभु ने इन्हे बनाकर क्यो विरचा अनुराग महान!
कहाँ निषेध? यहाँ तो छविमय भरा धरा मंजुल कल्याण।
इनके सेवन से बस समझो, इनका ही अस्तित्व प्रमाण॥

× × × × ×

तो दूसरी ओर वे ही यह कहते है —

कुसुम कहाँ हैं? भरे कामना की कुंजो मे कंटक जाल।
तज दो भोग-रोग के सम ही, यदि वाँछित हो शात रसाल॥
सब प्रश्नों का मूल प्रश्न है इसका धरो निरन्तर ध्यान।
हो तुम कौन? कहाँ से आए? क्या करते हो? किधर पयान?

* * * * *

मिट्टी की यह देह त्यागकर छोड़ तथा श्वासों के तार।
जब होकर उन्मुक्त पवन मे, कर सकती वह व्योम विहार॥
तब क्या आत्मा को यह होगी नहीं बड़ी लज्जा की बात।
गड़ी पड़ी इस सड़ी देह मे बंदी बनी रहे दिन-रात॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

वन जा दीन दीनता ही तो दीनबन्धु को प्रिय है, मित्र।
अरे ! साधु कहलाकर फिर क्यो धरे राजसी साज विचित्र॥
बरबस भेजा गया यहाँ; पर अब तो कर कुछ ऐसा काम।
जिससे फिर न भोगना होवे, जनम मरण का यह परिणाम॥

इन दोनो प्रकार के विचारो का सामञ्जस्य तभी हो सकता है जब हम उन्हे पूर्ण दार्शनिक ज्ञानी मानें और उनके मदिरा और मदिराक्षी प्रेम का असाधारण अर्थ ही ध्यान मे रखे।

ख़ेयाम के दार्शनिक प्रत्यक्षवाद में तथा सामान्य जीवो अथवा नास्तिकों के कोरे प्रत्यक्षवाद मे आकाश-पाताल का अन्तर है। वर्तमान की ओर दोनों का ध्यान है, परन्तु एक का वर्तमान ज्ञान से प्रकाशित है और दूसरे का अन्धकार से जकड़ा हुआ है। एक यदि सर्वप्रिय रहकर मुक्ति को बरबस करतलगत कर लेता है, तो दूसरा क्षुद्र सुखो के फेर मे पड़कर अपने स्वल्प जीवन पर अशान्ति और निराशा के बोझ लाद लेता है। इन दोनों प्रत्यक्षवादियों के अन्तर का कारण यही है कि एक ईश्वर ही को सब-कुछ समझ बैठना है और दूसरा अपने क्षुद्र व्यक्तित्व को ही समझ बैठने की चेष्टा किया करता है। यह पहिली समझ ही वह सूक्ष्म रेखा है जो सत्य और मिथ्या का भाग किया करती है। यही वह पारस-मणि है, जिसके सम्पर्क से संसार का लौहमय अस्तित्व एकदम सुवर्णमय बन जाता है। यही वह प्रकाश-किरण है, जिसके आ जाने मात्र से संसार की धुंधली वस्तुओं की यथार्थता स्पष्ट भासित होने लगती और मन एक अपूर्व ज्योति से—एक अद्भुत

उल्लास से—भर उठना है। तथा वह दूसरी समझ ही वह दुर्बुद्धि है, जिसके कारण सोने का संसार भी क्षणमात्र में धूल का ढेर बन उठता है। यही वह विषय है, जिसके फेर में पड़कर मनुष्य न जाने कितने दु:ख, न जाने कितने अनुताप, तथा न जाने कितनी निराशा भोगा करता है और अपनी वे सब लम्बी, चौड़ी आकाँक्षाएँ अपने ही साथ लेकर न जाने किस धूल के कोने में सदैव के लिये दब रहता है। ऐसे मनुष्यों के विषय मे खैयाम के निम्न पद—कितने मार्मिक है :—

एक बिन्दु था जो झट गिर कर महासिंधु में हुआ विलीन।
एक धूलकण था, धरती ने जिसे लिया क्षणभर मे छीन॥
इस नगण्य मानव जीवन पर इतना गर्व! अहह हा हन्त!
एक मशक था जो आकर के, किसी ओर उड़गया तुरन्त॥

× × × × ×

मिला मिला भरपूर मिला वह आशाओं का शुभ शृंगार।
मिला मधुर उद्यान, जहाँ मैं कर सकता हूँ रुचिर विहार॥
किंतु अहह! यह क्या? मैं तो बस ओस बूँद-सा आकर रात।
फिर उड़ भागा ज्योंही आया, पूर्व दिशा से सुखद प्रभात॥

× × × × ×

पड़ा हुआ था निर्जन वन में एक रणाहत नृपति-कपाल।
मैंने छोटी चिड़िया देखी, बैठी वहीं वृक्ष की डाल॥
पूछ रही थी वह उस सिर से "बतला दे हे अस्थि समूह।
कहाँ गये प्रासाद मनोरम, कहाँ गये वे तेरे व्यूह"॥

× × × × ×

आये थे किस निर्मल नभ से आकर कैसे हुए मलीन।
शान्ति सरीखी वस्तु गवाकर अब कैसे बन बैठे दीन॥
अश्रु-बिंदुओ से ढलकर हम हृदय-ज्वाल मे जले तुरन्त।
प्राण पवन के साथ उड़ाकर, धँसे धूलि मे फिर हा हन्त॥

ख़ैयाम के समान दार्शनिक प्रत्यक्षवादी इसी संसार में रहता है। इसी संसार की सामग्रियो का व्यवहार करता रहता है। वह बिलकुल संसारी—पुरुष के समान जान पड़ता है। परंतु हाँ, उसका दृष्टिकोण बदला हुआ रहता है। वह तो देखता है न, कि:—

सब रूपों में छिपा हुआ है वही दु:खभंजन जगदीश।
वही बना जड़, वह ही चेतन, वही रंक, वह ही अवनीश॥
राजा, रंक और जड़—चेतन होगे विकृत विनष्ट निदान।
किंतु रहेगा वर्तमान ही वह त्रिकाल में एक समान॥

× × × × ×

इसके साथ ही वह यह भी तो देखता है कि—

"ऐसी ही गीली मिट्टी को नर-तनु के साँचे में डाल।
विधि ने विरचे हैं कितने ही नर-नारी छवि धाम रसाल॥

× × × × ×

फिर आगे चलकर वह यह भी तो भली-भाँति अनुभव करता है कि:—

संभव है ये रजकण होवे किसी नयन के तारे श्याम।
संभव है ये प्याला होवे, कोई कान्त-कृपाल ललाम।
आज बनाती हैं जो ईंटें, किसी दुर्ग की दृढ़ दीवाल॥
संभव है उनमें हो कोई, नृपति-सचिव-मस्तिष्क विशाल

फिर पाठक ! आप ही कहिये कि उसके हृदय मे विश्व-प्रेम क्यो न उमड़ पडेगा ? वह—मनुष्यो, पशुओ, पक्षियो, कृमि-कीटो इत्यादि की कौन कहे, सामान्य वनस्पतियो और मिट्टी तक मे एक अपूर्व अनुराग रखने लगता है। उसकी सहृदयता उमड़–उमड़ कर विश्व-प्रेम-पारावार बन जाती है और उसके हृदय को एकदम निष्कलङ्क कर देती है। वह मिट्टी की बोलियाँ सुनता है * प्याले के जड़ ओठो मे जीवन का आभास पाता है (०) और सामान्य लताओ पर भी किसी तरह का भार नही देना चाहता।†

ऐसा प्रेमी पुरुप-धर्म के बाह्य आडम्बरो से क्योकर डर सकता है ? वह तो डंके की चोट कहता है :—

पानभूमि वह परम रम्य है हो जिसमे कुछ दिव्य उजास।
अन्धकार हो जिस मंदिर मे कौन जायगा उसके पास॥

× × × × ×

उसके मत में—

---

* मैंने देखा गीली मिट्टी ठोंक रहा था एक कुम्हार।
और सुनी मैंने रुक कर उस मिट्टी की अस्फुट सिसकार॥

* * * * *

(0) कभी जीवयुत था अवश्य वह करता रहता था रसपान।

* * * * *

† टिकते हो तो टिको यहां पर देखो,-दो हलका ही भार।
सभव है इसकी जड़ में हो कोई मधुर अधर सुकुमार॥

क्या रखा है मंदिर में क्यो पूजा के पोड़श उपचार।
वृथा स्तोत्र के स्रोत बहाना, जप-तप के हैं वृथा विचार॥
उसकी इच्छा पर चलता हूँ, मान रहा हूँ उसको 'एक'।
मेरी मुक्ति वनी निश्चित है, त्यागा जव जीवन—उत्सेक॥

* * * * *

इतनी ही नहीं वह दंभी भक्तो की हँसी उड़ाता हुआ कहता है :—

अंधा रूप सुधा क्या जाने वहरे को क्या सुर का ज्ञान।
तपसी क्या पहिचान सकेगा मादकता का मूल्य महान॥
मस्ती की इच्छा है तो तज यह सूखी विरक्ति की चाह।
दम्भी भक्तों के क्रन्दन से बढ़कर है विरही की आह॥

* * * * *

जाता हूँ मैं भी मंदिर से, करता हूँ मैं भी कुछ ध्यान।
किंतु सत्य तो यह है, मेरे हैं आराध्य न श्री भगवान॥
चुरा चुका था एक चटाई जीर्ण शीर्ण वह हुई मलीन।
इसी घात में आता हूँ, मैं कव ले भागूँ अन्य नवीन॥

* * * * *

इसी तरह वह सासारिक विभव-विलास की आशाओं से कभी जर्जर नहीं हो सकता * तथा वाह्य आसक्ति की कौन कहे अपने

---

* आशा, आशा जग की आशा के हित क्यों इतना अनुताप!
वह आशा तो पावक में जल, वनती भस्म आप ही आप॥

शरीर तक की आसक्ति भी उसे प्रिय नहीं होती * उसे दीनता पसंद है क्योंकि (०) वह अनासक्ति धारण करनेवाला रहता है। वह ज्ञान का ढोंग नहीं करता † और उसकी सादगी भी सुनने ही लायक है। पाठक ! देखिए उसके जीवन की आकान्ना :—

वही एक शाखा के नीचे होवे कविता ग्रंथ रसाल।
मदिरा का प्याला हो रोटी का कुछ टुकड़ा हो उस काल॥
तथा वहाँ उस निर्जन वन में बस मदिराक्षी हो करती गान।
तो उस ऊसर पर न्योछावर कर दूँ सौ-सौ स्वर्ग महान॥

धन्य है ऐसा निःस्पृह विश्वप्रेमी ! कितना आनंदमय जीवन है। कैसा बढ़िया दार्शनिक तत्व है। अनासक्ति पूर्वक लोक-कल्याण में निरत रहना तथा अपने जीवन को सदैव भगवान का प्रसाद

---

* तो क्या यह आत्मा को होगी नहीं बड़ी लज्जा की बात।
गन्दी पड़ी इस सड़ी देह में बन्दी बने रहे दिनरात॥

*   *   *   *   *

(०) बनजा दीन दीनता ही वो दीनबन्धु को प्रिय है मित्र।
अरे ! साधु कहलाकर भी क्यों धरे राजसी साज विचित्र॥

*   *   *   *   *

† जहां अभ्युदय है बस समझो उसी ओर है रागद्वेष।
वही असाधु कहाया जिसने धारण किया साधु का वेष॥
सच्चा ज्ञान उसे ही कहिये पाकर जिसको सन्त सुजान।
जग में रहकर भी इस जगसे रखते नहीं जान पहिचान॥

समझते रहना कितनी बड़ी भारी बात है। उस जगदाधार की इच्छा में अपनी इच्छाओं को मिलाकर मस्ती का जीवन बिता देना देवताओ के लिये भी परम अभीष्ट है, फिर मनुष्यो की कौन कहे।

यही वह दार्शनिकता है, जिसने ख़ैयाम के कवि-हृदय-रूपी-सुवर्ण को अद्वितीय सुगंधि प्रदान कर दी है। हृदय-खदान से उपजे हुए भाव-रत्न इस दार्शनिकता की सान पर चढ़कर एकदम चमचमा उठे। 'जगपर्दे' के 'छायाचित्रो' ही तक न रहकर वे उस 'खिलाड़ी' तक पहुँच गए हैं और वहाँ से एक ऐसा पारस ले आए हैं, जिसके सम्पर्क से बहिर्जगत और अन्तर्जगत के भावो की सुवर्ण राशि ही एकदम बिखर पड़ी है। संसार के सुंदर रूपो की झाँकियाँ तो उनने दिखलाईं परंतु साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि ये सब झाँकियाँ उसी "एक" की "अनेक झाँकियाँ" है। यही है उनका छायावाद (Mysticism) जो उन्हे सामान्य दार्शनिको तथा सामान्य कवियों से बहुत ऊपर उठा देता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ख़ैयाम एक अमर कवि हैं। उनकी उक्तियों में वह गहरी चोट है जो हृदय पर असर किए बिना रह ही नहीं सकती। उनकी वर्णनशैली कितनी अपूर्व है? उनके सामान्य शब्दों में कितना गंभीर अर्थ भरा रहता है? उनकी सामान्य बात भी किस अनुपम ढंग से कही जाती है? उनका वह सामान्य ढंग भी कैसी अचूक चोट चलानेवाला बन जाता है? बस देखते ही बनता है।

यहाँ पर खैयाम के कुछ उत्तम छन्दो का नमूना दे देना अनुचित न होगा। मानवजीवन की तुच्छता पर वे कहते हैं:—

दोनो लोको की चिंता मे जिनका बीता समय महान।
कहाँ तर्क-वागीश गए वे, कहाँ सन्त वे ज्ञान-निधान?
तिरस्कार पाकर बिखरे है उनके वे सिद्धान्त समूल।
और उन्ही के मुख मे देखो, भरी आज धरती की धूल॥

* * * * *

भक्तो के वे भाव मनोरम, और ज्ञानियो के सद्ज्ञान।
तथा सक्तियाँ भी सन्तो की,—हैं केवल कोरे आख्यान॥
निद्रा से कुछ काल जागकर जिन्हे सुना मित्रो के बीच।
जाकर गोद महानिद्रा की, लीं उनने फिर आँखे मीच॥

* * * * *

यह वह डेरा है मायामय पाकर जिसमे रुचिर प्रवेश।
करता है विश्राम एक दिन यमनगरी का पथिक नरेश॥
ज्योंही उठा नरेश, तुरत बस त्योंहीं काला झाड़ूदार।
अन्य अतिथि के हेतु इसे है झटपट कर देता तैयार॥

* * * * *

'हम-तुम' मिट जावेंगे फिर भी बना रहेगा जग-व्यवहार।
हम-सबके आने जाने का करता रहता कौन विचार?
निज उत्ताल तरंगों से है जिसे फेंक देता इस पार।
क्या उस क्षुद्र कंकड़ी का फिर करता पारावार विचार!

* * * * *

इसके साथ ही जरा इस विशालता को भी देखिये :—

नभ क्या है ! वह तो है मेरे अस्थिर जीवन का दृढ़ पाश ।
सागर क्या है ! वह है मेरे अश्रु-बिंदु का तरल प्रकाश ॥
नरक ! अहो वह है चिनगारी मेरी विषम व्यथा की एक ।
और स्वर्ग ! वह है जीवन के सुखद समय की झाँकी एक ॥

× × × × ×

एक और छंद का मुलाहिज़ा कीजिये :—

यद्यपि मम सर्वस्व हरण कर, लीं इसने अब आँखें फेर ।
फिर भी इस पर ही रखता हूँ श्रद्धामय सुमनो के ढेर ॥
होता है आश्चर्य मुझे तो लख इसका विक्रय व्यापार ।
मानिक-सी मदिरा देकर, कुछ कौड़ी ही पाता कलवार ॥

यहाँ 'कलवार' सामान्य मनुष्य के लिये, 'मदिरा' हृदय के अनुराग के लिये तथा 'कौड़ी' साँसारिक सुख आदि के लिये आया है। खैयाम अपने हार्दिक अनुराग को जगत् की ओर नहीं, किंतु जगदाधार की ही ओर अर्पित करना चाहते हैं, और भगवद् विरह रूपी तीव्र अनुराग में अपना सर्वस्व जलाकर भी पतिंगे के समान उसी प्रकाश पर मर मिटना चाहते है।

विरह और प्रेम पर उनकी उक्तियाँ देखिये :—

जिसमें उपालंभ हो जिसमे रुदन और दुख का आख्यान ।
मोह भले पी कहलावे वह, प्रेम न कहते उसे सुजान ॥
मर जावे प्रेमी घुलघुल कर किन्तु न निकले मुँह मे आह ।
सच्चा प्रेम वही है जिसकी पावे अन्य न कोई थाह ॥

× × × × ×

दर्द न हो दिल ही क्या है, प्रेम न हो तो जीवन व्यर्थ।
विरह न हो तो इस जीवन में रहा प्रेम ही का क्या अर्थ?
विरह-व्यथा कण्टक सहकर ही मिलता है गुलाब छविवान।
शत-शत छिद्र सहन कर कंघो, पाती प्रिया केश में स्थान॥

× × × × ×

ज्ञानसिंधु में गहरे पैठा फिर भी मिली न तेरी थाह।
ज्ञानसिद्धि बस इसमे ही है, हो तेरी करुणा की चाह॥
रजकण में मैं मिल जाऊँगा लेकर तेरा प्रेम महान।
फिर तेरी ही करुणा आकर कर देगी मेरा उत्थान॥

× × × × ×

जगदाधार के विषय की इनकी सूक्तियाँ भी सुनने ही लायक हैं। वे कहते हैं:—

दिखा रहा है मायापति निज रुचिर सिनेमा खेल ललाम।
सूर्य नहीं है अर्धनिशा का यह तो है प्रदीप अभिराम॥
तथा यहाँ जिसके सकाश से हम सब छायाचित्र समान।
जग-परदे पर घूम घूम कर दिखलाते हैं चरित अजान॥

× × × × ×

बिछी हुई शतरंज अहा! यह कहते हो जिसको संसार।
दिवस-निशा है दो रंगे घर, हम सब हैं मुहरे छवि सार॥
बेबस हमें चलाता है वह, शह देकर करता है मात।
क्रम-क्रम से सबको भर लेता, डिब्बे में फिर पिछली रात॥

× × × × ×

भोग रोग के विषम योग से, रच-रच करके गेंद अनेक।
यहाँ वहाँ से, वहाँ यहाँ से पहुँचा रहा खिलाड़ी एक॥
लाया इस मैदान बीच है तुमको जो बनकर अखिलेश।
वही खिलाड़ी जान रहा है क्या इन खेलों का उद्देश॥

× × × × ×

जगदाधार और जीव के संबंध की कुछ सूक्तियाँ भी सुन लीजिये :—

महाशून्य से चेतन बुद्बुद क्यों प्रगटाया हे जगधाम!
प्रगटाया तो विविध सुखों पर रक्खा क्यों बंधन उद्दाम॥
बन्ध रखा तो उनके प्रति फिर क्यों रच दिया उपेक्षा ज्ञान।
रखा उपेक्षावालों के हित क्यों फिर ऐसा दण्ड-विधान?

× × × × ×

विवश जीव को दिया तुम्हीं ने पीतल का सा जीवनदान।
माँग रहे हो अब उससे तुम अति संशुद्ध सुवर्ण महान॥
कर्ज़ चुकावेगा वह कैसा, लिया जीव ने जब न उधार।
यह कैसा लेना देना है, यह कैसा अद्भुत व्यापार?

× × × × ×

मेरे पथ पर बिछा रखे हैं तुमने ही तो कण्टक जाल।
जान गया सब मैं विरचे हैं तुमने ही ये गर्त विशाल॥
मुझे फँसाकर दुश्चरितों में गर्तों बीच ढकेल सरोष।
क्या है समुचित तुम्हें पाप के मत्थे मढ़ना सारा दोष?

* * * * *

तुमने मादक सुमन पुञ्ज से सजा दिया जग का उद्यान।
पूर्ण चंद्र का रास रचाया तुमने ही सौंदर्य निधान॥
इतना करके अब कहते हो 'वस न फिराना दृग इस ओर।'
कहदो सच-सच तुम्हीं दयानिधि! क्या यह अत्याचार न घोर?

* * * * *

उनकी इस उदात्त भावना का भी मुलाहिज़ा कीजिये'—
ज्ञानसिंधु मे गहरे पैठा फिर भी मिली न तेरी थाह।
ज्ञानसिद्धि वस इसमे ही है, हो तेरी करुणा की चाह॥
रजकण मे मैं मिल जाऊँगा लेकर तेरा प्रेम महान।
फिर तेरी ही करुणा आकर कर देगी मेरा उत्थान॥

* * * * *

कहाँतक कहे! इसी प्रकार न जाने कितने अनुपम छंद इन रुवाइयो में भरे पडे है। हीरे की माला मे कौन छोटा, कौन वडा, कौन अच्छा, कौन ख़राव! सभी तो मूल्यवान् हैं और सभी तो दर्शनीय हैं।

यो तो खैयाम के नाम पर अव हज़ारो छंद प्रचलित है, परंतु बहुत छान-बीन के बाद विद्वानो ने पता लगाया है कि लगभग ३०० छंद ही यथार्थ मे ख़ैयाम के रचे हुए है, जिनमे लगभग १५० छंद ही उत्कृष्ट और यथार्थत. प्रामाणिक हैं। इन छन्दों में भी फिट्ज़ जेराल्ड साहव ने वहुत-कुछ फेरफार कर दिया है और अपने चौथे संस्करण में कुल १०१ अंग्रेजी छन्द ही ख़ैयाम की रुवाइयों के नाम पर प्रकाशित कराए हैं। साहित्यिक जगत् में ख़ैयाम के

नाम पर इन्हीं छन्दों का बहुत अधिक प्रचार तथा आदर है। इन छन्दों में जेराल्ड महोदय ने पूर्ण स्वतंत्रता से काम लेकर ख़ैयाम को एक नवीन रूप ही प्रदान कर दिया है। जो आठ सौ वर्ष का बुड्ढा था, वह कल का नौजवान जान पड़ने लगा। जो केवल कुशल कारीगर था वह अब चतुर चित्रकार भी बन बैठा। उमर ख़ैयाम और फ़िट्ज़ जेराल्ड को अलग-अलग देखना मानों सरस्वती के आभूषणों के रत्न और सुवर्ण को अलग-अलग करना था। इसलिये मैंने तो उसी ख़ैयाम को विशेष रूप से ग्रहण किया, जिसने फ़िट्ज़ जेराल्ड के कोमल कण्ठ द्वारा अपनी काव्य मधुरिमा प्रवाहित की है। अपने को तो बढ़िया मिठाई से मतलब है। उसका बनानेवाला चाहे एक हो या अनेक। इसलिये ख़ैयाम के मूल पद्यों को छोड़ मैंने फ़िट्ज़ जेराल्ड साहब के पद्यो ही का अनुवाद किया है और अन्तरङ्ग साधनों के आधार पर ख़ैयाम के विषय में मैंने जो कुछ लिखा है वह इन्हीं और ऐसे ही पद्यो के आधार पर है। पाठक यदि तुलना करेंगे, तो स्वतः देख सकेंगे कि ख़ैयाम की फ़ारसी की रुबाइयाँ विशेष उत्तम हैं या फ़िट्ज़ जेराल्ड द्वारा कही गई अंग्रेजी की रुबाइयाँ। हाँ, कहीं जहाँ मूल रुबाइयों के भाव ज्यादा अच्छे जान पड़े है, वहाँ मैंने फ़िट्ज़ जेराल्ड का साथ छोड़कर उन मूल भावों ही को ग्रहण किया है। मूल ख़ैयाम के अनेक भाव ऐसे भी मिले हैं जो इन १०१ छन्दों में ठीक ठीक न आ पाये थे। उन्हे मैंने ग्रहण कर पूरे १५० छन्दो की यह पुस्तक तैयार कर दी है। मैंने अपनी ओर से भी एक धृष्टता

कर दी है। वह है छन्दो का स्वतंत्र-क्रम। मैने वर्ण्य विषय के अनुसार संपूर्ण छन्दो को चार भागो में विभक्त कर दिया है और प्रत्येक भाग के उप-विभाग भी स्थिर कर दिये है। इन उपविभागो में भी छन्दो के क्रम इस ढँग पर रक्खे गये हैं कि वे वर्ण्य विषय की पुष्टि करते हुए परस्पर संबद्ध से ही हो गए हैं। जहाँ कहीं एक भाव से दूसरे भाव मे कुछ अन्तर आया, वहीं उन दोनो छन्दो के बीच में × के चिन्ह दे दिये गए हैं। पाठको के सुविधा के लिये परिशिष्ट मे अंग्रेजी के छंद (जिनमे फिट्ज जेरल्ड के चतुर्थ संस्करण वाले सब छंद शामिल है) इसी क्रम से दे दिये गए है। पाठक इन छन्दो को पढकर यह देख लेगे कि किस प्रकार मानवजीवन की तुच्छता और परिवर्तनशील जगत के उलट-फेर को देखकर कवि अपना मनस्ताप व्यक्त करता है और फिर किस प्रकार काल्पनिक कुम्हार के घड़ो का वार्त्तालाप सुनकर तत्वानुसंधान मे प्रवृत्त होता है और इस तरह नियतिचक्र की दृढ़ता और स्वर्ग-नरक की काल्पनिकता का अनुभव करता हुआ किस प्रकार शुष्क ज्ञान को फटकारता और नक्द धर्म पर जोर देता है। उसका यही नक्द धर्म मादकता के भावो मे व्यक्त किया गया है, जिसमे कवि मदिरा का महत्व बताकर 'पियो-पियो' का उपदेश देता है। चतुर्थ खंड में कवि की आकाक्षा और उसका आह्वान—संदेश—सुनाकर प्रेम और प्रेमधाम का रहस्य बताया गया है और प्रेमधाम के प्रति व्यक्त की गई भावनाओ के साथ यह ग्रन्थ समाप्त किया गया है।

रुबाई एक खास तरह के छन्द का नाम है। इसमे प्रथम द्वितीय और चतुर्थ चरण की तुक मिलाई जाती है और तीसरा

चरण अतुकान्त ही रख दिया जाता है। कहा जाता है कि ऐसा करने से चतुर्थ चरण के वर्ण्य विषय का महत्व बढ़ जाता है। हिन्दी मे इस तरह की कोई भी परिपाटी नहीं है। श्री गुप्तजी तथा सेहर महोदय ने मूल खैयाम के हिन्दी पद्यमय शाब्दिक अनुवाद में इस परिपाटी का प्रचलन कर दिया है। परन्तु मै तो समझता हूँ कि ऐसा कर देने से हिन्दी पद्यो की स्वतंत्र रोचकता ही उड़ गई है और वे मँगनी के-से जान पड़ने लगे है। मुझे तो अपने ही छंद और अपने ही नियम प्यारे थे, इसलिये मैंने तो वीर छन्द का आश्रय लेना ही मुनासिब समझा है।

अनुवाद वही सच्चा है जो अनुवाद होकर स्वतंत्र रचना के रूप में रहे। अनुवाद वही प्रिय होगा, जो मूल तत्व को न त्यागते हुए भी अपने-अपने देश-काल और पात्र के अनुकूल हो। ऐसा अनुवाद तैयार कर देना कोई हँसी-खेल नहीं। मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मै अपने अनुवाद मे पूर्णत सफल हो सका हूँ। परन्तु हाँ, इस दिशा मे मैंने कैसा प्रयत्न किया है, इसका दिग्दर्शन करा देना मै अवश्य उचित समझता हूँ।

पहिली कठिनाई तो ऐतिहासिक पुरुषों की थी। कैखुसरो, कैकोबाद, जाल, जमशेद आदि के नाम फारस मे भले ही सुप्रसिद्ध हो, परन्तु भारत मे बहुत-कम हिन्दी-प्रेमी इन्हें जानते है। इसलिये इस अनुवाद मे इन्ही नामो को बनाये रखना अपने देश-काल, और पात्र के सर्वथा विरुद्ध होगा। और फिर अनुवाद में स्वतंत्र रचना का आनन्द कभी न आ सकेगा। यदि इनके नाम एकदम उड़ा

जायँ तो भी काव्य का माधुर्य चला जाता है, क्योंकि 'इस भारी बोझ को उठाने के लिये एक बड़ा पहलवान चाहिये' कहने की' अपेक्षा 'इस पहाड को उठाने के लिये एक भीमसेन चाहिए कहना अधिक काव्यमय जान पड़ता है। तब खूबी इसी मे है कि कैखुसरो आदि के समान व्यक्तियों के नाम अपने भारतीय इतिहास से ही ढूँढ़कर रख दिये जायँ। उदाहरणार्थ यदि —

> Iram indeed is gone with all his Rose
> And Jamshyd's Seven-ring'd cup where no one
> knows

इन लकीरों के लिये—

> गये नये कुसुमो को लेकर पाटल प्रेमी भूप अपार।
> जाने कहाँ किधर जा बैठे, मदिरा लोलुप नृपति अपार॥

कहा जाय तो रचना कुछ फीकी जँचेगी। और यदि—

> गये गुलाब सुमन सब लेकर नृपति इराम समान अपार।
> तथा छिपे वे मदिरा लोलुप नृप जमशेद समान उदार॥

कहा जाय तो रचना में कोरे अनुवाद ही की बू रह जायगी। परन्तु उन्हीं पंक्तियों के लिये यदि —

> गये गुलाब सुमन निज लेकर बाबर-से भूपाल अपार।
> जहाँगीर-से नृपतिवरों का कहाँ छिपा प्याला सुकुमार॥

कह दिया जाय तो निस्सन्देह विशेष रोचकता आ जावेगी, क्योंकि एक तो व्यक्तिवाचक नाम भी आ गये, दूसरे उनमे वर्ण्य विषय के अनुसार पारस्परिक सम्बद्धता भी आ गई। बाबर गुलाबों का प्रेमी और जहाँगीर प्याले का प्रेमी प्रसिद्ध है। दोनो ही भारत

के सुप्रसिद्ध सम्राट् हो गए हैं और खूबी यह कि दोनों का पारस्परिक संबंध भी है।

Let Zal and Rustom bluster as they will
Or Hatim call to supper—heed not you

इन पंक्तियों के लिये—

'अभिमानी औरंग अकड़ ले, दारा दिखला ले औदार्य'।

भी इसी तरह रख दिया गया है।

They say the Lion and the Lizard Keep
The courts where Jamshyd gloried and drank deep
And Bahram, that great hunter the wild ass
Stamps over his Head, but can not break his
Sleep

के लिये—

जहाँ भीम-अर्जुन रहते थे आज वहाँ है बसे शृगाल।
विक्रम के वैभव पर नाचा करते हैं अब व्याल कराल॥
गज़नी की समाधि अवनी पर गधे विचरते हैं स्वच्छन्द।
फिर भी उनकी ठोकर खाकर नींद न होती उसकी मन्द॥

इसी विचार से किया गया है।

Whether at Naishapur or Babylon के अनुवाद में पहिले मैंने लिखा था —

'भारत की वह पुण्यभूमि हो या हो फारस का वह देश।'

परंतु पीछे खैयाम के जन्मस्थान नैशापुर का नाम रख देना भी आवश्यक जान पडा। इसलिये फिर वह लकीर यों लिख दी गई।

'नैशापुर या नन्दगाँव हो, फारस हो या भारत देश।'

यहाँ नैशापुर का सम्बन्ध फारस से और नन्दगाँव का भारत से है। यदि वहाँ नैशापुर खैयाम की जन्मभूमि है, तो यहाँ नन्दगाँव उसके इस अनुवादक की भी जन्मभूमि है। साथ ही दूसरा नन्दगाँव यहाँ की उस व्रजभूमि का भी एक भाग है, जहाँ खैयाम से अनेक गुणा अधिक सुरीली तान छेड़नेवाले आनन्दकन्द श्रीकृष्णचंद्रजी वर्तमान थे। यह अर्थ चमत्कार रहते हुए नैशापुर और नन्दगाँव में शाब्दिक चमत्कार भी आ गया है।

Where the white Hand of Moses on the bough
Puts out, and Jesus from the ground suspires.

इन पंक्तियों में मोजेज (मूसा) और जेसस (ईसा) के समान ही दो व्यक्तिवाचक नाम ठीक-ठीक न जम सके, इसलिए उनकी जगह 'विभु की दो विभूतियों' का ही जिक्र कर दिया है और इन पंक्तियों को इस प्रकार लिख दिया है :—

जहाँ विटपवर की शाखायें जाती हैं धरती पर भूल।
विभु की दो विभूतियों का यों होता जहाँ मिलन सुखमूल॥

मेरे विचार में ऐसा लिखना विशेष चमत्कारपूर्ण भी हो गया है। विटपवर ('अश्वत्थ सर्ववृक्षाणां' वाले गीता के वाक्य के अनुसार) और धरती ('पृथिवी वायुराकाश आपोज्यातिरहंमहान' वाले भागवत-वाक्य के अनुसार) विभु की दो विभूतियाँ हैं ही। साथ ही हजरत ईसा और मूसा भी विभु की दो विभूतियाँ हैं। इसलिये वृक्ष और पृथ्वी के सुखमूल सम्मेलन में विभु की दो

विभूतिया, सुखमूल सम्मेलन का इशारा कर देना हर तरह उत्तम वन पडा है।

And this first summer month that brings the Roses
Shall take Jamshyd and Kaikobad away.

इन पंक्तियों का मैंने इस प्रकार अनुवाद किया है :—

लाता है पाटल प्रसून जो मृदु वसन्त का यह नव मास।
वही यहाँ से ले जावेगा लेनिन-पौरुष जार-विलास॥

यद्यपि लेनिन और जार भारतीय नहीं हैं, फिर भी वे भारत में भारतीयो के समान ही विश्रुत हो चुके हैं। इसलिये उनका उल्लेख कर देना किसी प्रकार अनुचित न था। फिर बिलकुल आधुनिक एक ही स्थान और एक ही समय के परंतु साथ ही परस्पर विरुद्ध गुणवाले लेनिन और जार का इसप्रकार एकत्र समावेश मेरे विचार से मूल की अपेक्षा अधिक भावमय हो गया है।

दूसरी कठिनाई पारिभाषिक शब्दो के अनुवाद की थी। फारसी में साकी शब्द अपना खास मतलब रखता है। हिन्दी में ऐसा कोई भी शब्द नही है। इसलिये साकी शब्द का—जहाँ जोभाव उपयुक्त जान पड़ा, वहाँ वैसा ही अर्थ कर दिया गया है। उदाहरणार्थ:—

The Eternal Saki from that bowl has poured
Millions of bubbles like us, and will pour

का यह अनुवाद किया गया है :—

मदिरामयी महामाया के पानपात्र से आ इस ठौर।
हम तुम सम कितने ही बुद्‌बुद्‌ गिरे, गिरेंगे कितने और॥

महामाया का पानपात्र प्रसिद्ध है। और उस आदिशक्ति के द्वारा चेतन बुद्बुदों का आविर्भाव होता ही है।

गुलाब के लिये तो पाटल शब्द रखा गया है, परंतु शेष पुष्पों के नामों मे मैंने स्वतंत्र फेरफार कर दिया है। बुलबुल के स्थान पर मैंने कोकिल रख देने का विचार किया था, क्योंकि भारतीय बुलबुल 'मंजुवादिनी' नहीं रहा करती। परंतु फिर मैंने बुलबुल के स्थान में बुलबुल ही रहने दिया, क्योंकि मैंने देखा कि 'हिन्दी कवि संप्रदाय' ने बोलती हुई बुलबुल को भी अपना लिया है। सराय के लिये अतिथि-भवन अथवा अतिथिशाला शब्द ही मुझे अधिक रोचक जान पड़े।

शराब के लिये मैंने हाला, सुरा, आसव आदि शब्द बिलकुल पसन्द न किये। मुझे तो केवल एक शब्द पसंद आया और वह था, 'मदिरा'। जो मादकता ले आवे वह मदिरा। फिर चाहे वह 'मदिरा' कोई स्थूल वस्तु हो या सूक्ष्म। इसीलिये मैंने सब स्थानों पर केवल इसी एक शब्द का प्रयोग किया है। मदिरा से मिलता-जुलता ही दूसरा शब्द है मदिराक्षी। यह भी अपना विशिष्ट अर्थ रखता है। केवल एक स्थान पर 'चंद्रमुखी' शब्द का प्रयोग हुआ है। (देखो छन्द नं० ११६) क्योंकि वहाँ चन्द्र के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ा गया है।

तीसरी कठिनता थी मुसलमानी धर्म के अनुसार, जो विशिष्ट भावनायें व्यक्त की गई हैं उनके अनुवाद की। इनमें मैंने अवश्य उचित फेरफार कर दिया है।

'And peace to Mohmud on his golden throne'

के लिये'—

विकसित रहती जहाँ सदा ही श्याम सखा की वंशीतान।

लिखा गया है। इसी प्रकार—

The mighty Mohmud, Allah breathing Lord
That all the misbeliving and black Hord
Of fears and sorrows that infest the Soul
Scatters before him with his whirlwind Sword

के लिये—

अविश्वास भय और दुःख के दानव फैलाकर तम घोर।
सदा किया करते आत्मा को व्यथायुक्त जर्जर बरजोर॥
वही भगाता है इन सबको लेकर आँधी रूप कृपाण।
जो है दीन जनों का पालक, जो है अखिल जगत् का प्राण॥

× × × × ×

लिखा गया है।

एक छन्द और भी देखिये—

A hair perhaps divides the False and True
Yes, and a single Alif were the clue-
Could you but find it-to the Treasure House
And per adventure to the Master too.

× × × × ×

इसका अनुवाद यों किया गया है—

एक सूक्ष्म रेखा ही करती सत्य और मिथ्या का भाग।
और अकार अर्धमात्रा का, है उस रेखा पर अनुराग॥
यदि वह अ अ् आ सीख सकोगे तो मणिमय कोषो के संग।
स्वामी को भी पा सकते हो अनायास ही सहित उमंग॥

× × × × ×

इसमें 'अकार अर्धमात्रा', अअ्आ (वर्णमाला) 'मणिमय काष' और 'स्वामी' शब्द इस प्रकार लाये गये है कि जो मूल के भाव को तो व्यक्त कर ही देते हैं, परंतु साथ ही तंत्रशास्त्र और सन्तमत के विशिष्ट शब्द होने के कारण वे इस सम्पूर्ण छन्द मे एक अपूर्व रोचकता ले आते हैं, तथा इसे एकदम भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत कर देते है।

आकाश के भावो को वदलना मैंने मुनासिव न समझा, क्योंकि वे हिन्दी मे वहुत प्रचलित हो चुके हैं। इसलिये 'आकाश पर दृष्टि जमाना', 'आकाश से सहायता माँगना' तथा 'आकाश के द्वारा उलटा दिया जाना' आदि सव उर्दू-फारसी काव्य के समान यहाँ भी रहने दिया गया है। मुर्दों के गाड़ने की प्रथा तथा एक वार मरकर फिर न आ सकने का सिद्धात—ये दोनो ही वातें खैयाम के काव्य की जान हैं। इनपर किसी प्रकार का हेरफेर करना मानो उनकी कविता के सौदर्य पर ही कुठाराघात करना है। मुर्दे गाड़ने की प्रथा–समाधि की प्रथा–तो भारत में भी देखी जा सकती है और एकवार मरकर इस शरीर के फिर न आ सकने की वात यहाँ भी मानी ी जाती है। इसलिये भारतीय संस्कृति वालो को भी

पानभूमि वह परम धन्य है हो जिसमे कुछ दिव्य उजास।
अन्धकार हो जिस मन्दिर मे कौन जायगा उसके पास॥

× × × × ×

कर दिया गया है।

किसी-किसी स्थान पर अनुवाद में विशेष रोचकता लाने के लिये कुछ स्वतंत्रता से भी काम ले लिया गया है। यथा—

Oh, wilderness were Paradise anew

के लिये—

'तो उस ऊसर पर न्योछावर करदूँ सौ-सौ स्वर्ग महान'।

तथा—

I wonder often what the Vinters buy
One half so precious as the stuff they sell

के लिये—

'मानिक-सी मदिरा देकर कुछ, कौडी ही पाता कलवार'।

लिखा गया है।

इसी प्रकार—

'The ball no question makes of Ayes and Noes

'भोग रोग के विषम योग से, रच-रच करके गेंद अनेक'।

लिखा गया है।

जेराल्ड साहब ने एक जगह कहा है.—

Of Heaven Parvin and Mushtari they flung
In my predestined plot of dust and soul

इसमे परवी (वृष राशि के नक्षत्र) और मुश्तरी (बृहस्पति गृह) के संयोग का रहस्य अच्छी तरह खोला नहीं गया । इसलिये मैंने इन पंक्तियों का अनुवाद इस प्रकार किया है —

मिला मुझे जो यहाँ नियति से बँधा हुआ जीवन का काल ।
वृष के गृह से गुरु ने उसमे दी कुछ थोड़ी मदिरा डाल ॥

× × × × ×

ज्योतिष में कहे हुए द्वादश भावो मे-से दूसरे भाव को वृष का गृह कह सकते है, क्योंकि वृष द्वितीय राशि है । यदि द्वितीय गृह मे बृहस्पति बैठा हो, तो ज्योतिष के अनुसार उसका फल होता है, 'स्वल्प धन लाभ, तथा विद्या के कारण नाम, मान, धन, और प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति' । उमर खैयाम की जीवनी मे यही बात प्रत्यक्ष दिखाई भी पडती है और उसकी भाषा में इन्हीं बातो के लिये 'कुछ थोड़ी मदिरा' कहा भी जा सकता है ।

कई स्थानो पर मैंने दो-दो चार-चार छन्दो का भाव एक ही छन्द मे रख दिया है और इस तरह अनुवाद में बहुत विशेष स्वतंत्रता दिखा दी है । उदाहरण के लिये ये दो-चार छन्द पर्याप्त होंगे —

टूटा एक समाधि भवन था करता था कुछ मूक विलाप ।
मिट्टी की दो ईंटे भी थीं पडी हुईं उसपर चुपचाप ॥
मैंने देखा रखा हुआ था एक ईंट के बीच विशाल—
किसी भिखारी के चरणों पर किसी भूप का अवनत भाल ॥

× × × × ×

क्यों रज की ढेरी पर विधि ने बिखराई छवि-राशि महान।
देह त्यागकर जाना ही था तो आए ही थे क्यों प्राण ?
हा निष्ठुर विधि ! ज्योंहीं करता मनुज क्षणिक विश्राम-विचार !
काल जगाकर उसको झटपट कहता है 'चल–हो तैयार' ॥

× × × × ×

जिधर आँख उठती है अपनी, उसी ओर यह क्या हर वार।
अपनी असफल आशाओं के देख रहा हूँ रूप अपार ॥
यही सोचकर उषःकाल में करता है कृकवाकु विलाप।
चली गई जीवन–सीमा से, हटकर एक रात चुपचाप ॥

× × × × ×

दर्द न हो तो दिल ही क्या है, प्रेम न हो तो जीवन व्यर्थ।
विरह न हो तो इस जीवन मे, रहा प्रेम ही का क्या अर्थ ?
विरह-व्यथा कण्टक सहकर ही, मिलता है गुलाब छविवान।
शत-शत छिद्र सहन कर कंघी, पाती प्रिया-केश में स्थान ॥

× × × × ×

सुमन न मिला बुझा लूँगा तो काँटे ही से मन की प्यास।
पर यदि काँटा भी न मिला तो, क्या होगी जीवन की आस ?
हुआ और के लिये विवश वह जो था मेरा प्राणाधार।
होगा क्या उपचार कहो फिर, बना वैद्य ही जब बीमार ?

× × × × ×

परन्तु मैने फिट्ज़ जेराल्ड के छन्दों के अनुवाद में ऐसा नहीं किया है। उनके एक सौ एक छन्द तो पूरे-पूरे अनूदित कर दिए गए हैं।

अनुवाद मे स्वतंत्र रचना की रोचकता लाने के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि उसकी शब्द-याजना और उसके स्वच्छंद प्रवाह की ओर विशेष ध्यान रक्खा जाय। मैंने अपनी ओर से नो अवश्य चेष्टा की है कि इन दोनों बातो मे यह अनुवाद उत्तम ही रहे। शब्द-यांजना के लिये मैंने चेष्टा की है कि जहाँतक हो शब्द ऐसे रखे जायँ, जो अपना भाव स्वयं ही व्यक्त कर सकें।

'उपवन में बिखरा देता हूँ सुन्दरता की निधि अनमोल'

यहाँ पर 'बिखेर' देता हूँ की जगह 'बिखरा' देता हूँ जान-बूझ कर लिखा गया है, क्योंकि 'बिखराना' शब्द की ध्वनि में एकत्र वस्तु को फैला देने का भाव जितनी अच्छी तरह व्यक्त हो सका है, उतना 'बिखेर' शब्द की ध्वनि में नहीं।

'गड़ी पड़ी इस सड़ी देह मे, बन्दी बनी रहे दिन-रात'

इसमे उज्वल आत्मा के कारावास रूप इस शरीर की तुच्छता बतलाने के लिये 'गड़ी पड़ी और सड़ी' शब्दों का उपयोग किया गया है।

'gently brother gently' के लिये.—

'धीमे भाई धीमे ही बस धीमे-धीमे करो प्रहार'

लिखकर एक आहत जीव की करुण-प्रार्थना व्यक्त करनेवाले ... का वि... संयुक्त योग दिखाने की चेष्टा की गई है।

"मिला-मिला भरपूर मिला वह आशाओं का शुभ शृङ्गार।
मिला मधुर उद्यान जहाँ मैं कर सकता हूँ रुचिर विहार॥
किन्तु अहह! यह क्या मै तो बस ओस बूँद-सा आकर रात।
फिर उड़ भागा ज्योंही आया, पूर्व दिशा मे सुखद प्रभात॥"

इसमे 'मिला' की पुनरावृत्ति तथा उसी शब्द का प्राधान्य अपना विशेष अर्थ रखते है। और साथ ही 'अहह' 'यह क्या' 'बस' ये शब्द भी अर्थ-चमत्कार को बढ़ाने के लिये ही रखे गए हैं, घटाने के लिये नहीं। इसी तरह छन्द नं० ३ में सुवर्ण कणों के साथ 'मायामय सुवर्ण अवनी' का उल्लेख करना अपना विशेष चमत्कार रखता है। और छन्द नं० १३ मे 'रणाहत' "अस्थि-समूह' 'प्रासाद मनोरम' तथा 'वे तेरे व्यूह' भी उपयुक्त शब्द योजना के उत्तम उदाहरण कहे जा सकते हैं। छंद नं०३०में 'ली उखाड़ मेखें अदृष्ट ने जीवन के सब रस्से खोल' लिखा गया है। मेखे उखाडने की बात शब्द योजना के सौन्दर्य के लिये ही लिखी गई है। छंद नं० ३१में अश्रु-बिंदु' 'हृदयज्वाल' 'प्राण-पवन' और 'धूलि' के चार तत्वों के वर्णन के साथ-ही-साथ नभ तत्व का भी उल्लेख करने ही के लिये प्रथम पंक्ति मे 'आये थे किस निर्मल नभ से, आकर कैसे हुए मलीन' यह कहा गया है। ४० वें छन्द का 'मिट्टी का लाल' अपना जो विशिष्ट अर्थ रखता है, वह पाठको से छिपा नहीं है। ४४ वें छन्द मे 'बेबस हमे चलाता है वह, शह देकर करता है मात' कहा गया है। इस पंक्ति मे शह देकर मात करने की बात अपना खास महत्व रखती है। ५० वे छन्द मे 'श्याम विरह में श्याम

शरीर' तथा 'रजनी अञ्चल मे आवृत्त पाया दिवस प्रकाश' लिखना भी इसी शब्द-याजना की सुन्दरता के लिये है। इसी तरह के और भी अनेकानेक उदाहरण ढूँढ़कर बताये जा सकते हैं।

कविता के स्वच्छन्द प्रवाह के विषय मे निम्नलिखित कुछ छन्द लिख देना ही पर्याप्त होगा —

देखो, रस से हरी-भरी यह अति सुकुमार लता अभिराम।
झूम झूम कर चूम रही है, सरिता के मृदु ओठ ललाम॥
टिकते हो तो टिको यहाँ, पर देखो, दो हलका ही भार।
संभव है इसकी जड मे हो कोई मधुर अधर सुकुमार॥

× × × × ×

दोनों लोको की चिन्ता मे जिनका बीता समय महान।
कहाँ तर्कवागीश गए वे, कहाँ सन्त वे ज्ञान निधान!
तिरस्कार पाकर बिखरे है, उनके वे सिद्धान्त समूल।
और उन्हीं के मुख मे देखो भरी आज धरती की धूल॥

× × × × *

संध्या मे बिजली-सा बनकर खोल अतिथि-शाला के द्वार।
अभी-अभी ही एक अनोखा देवदूत आया इस पार॥
अपना पात्र बढ़ाकर आगे वह बोला 'चख सुरस ललाम'।
मैंने चखा, अहो वह तो थी प्रमुदमयी मदिरा अभिराम॥

* * * * *

विकसित होकर बाला पाटल 'मैं ही हूँ प्रेमी मंसूर।
मेरे मानिक-से मुखपर है मढ़ा हुआ सोना भरपूर'॥

मैने। कहा 'तभी मानूंगा देखूँ जब कुछ चिन्ह विशेष'।
उसने कहा 'देखले मेरा शीर्ण कलेवर शोणितवेष'॥

* * * * *

तुमने मादक सुमन पुंज से सजा दिया जग का उद्यान।
राकाशशि का रास रचाया, तुमने ही सौंदर्य निधान॥
इतना करके अब कहते हो 'बस न फिराना दृग इस ओर?'
कह दो सच-सच तुम्ही दयानिधि! क्या यह अत्याचार न घोर?

* * * * *

पाठक देखेंगे कि इन छन्दो मे किस प्रकार भावों का निर्बाध विकास होता गया है और किस प्रकार भावव्यंजनी भाषा अविहत गति से प्रवाहित होती चली गई है। कविता भी मानों पहाड़ी घाटियो से न जाकर समतल मैदान के मार्ग से मृदु मंद गमन करती चली जा रही है।

काव्य मे प्रसादगुण का बहुत बड़ा महत्व है। यदि सुन्दर शब्द-योजना और कविता की स्वच्छन्द गति के साथ प्रसादगुण का पूरा-पूरा निर्वाह हो सका तब तो फिर कहना ही क्या है। मेरा आदर्श यही था। मैं जानता हूँ कि आदर्श सदैव आदर्श (Ideal) ही रहता है। वह चरितार्थ (Real) बहुत कम हो सकता है। इसलिये मैं भी अपने आदर्श उद्देश को कहाँ तक चरितार्थ कर सका हूँ, यह विषय पाठको के निर्णय पर ही छोड़ अपनी लेखनी को यहीं विश्राम देना उचित समझता हूँ।

क्या ही अच्छा होता यदि खैयाम के काव्य का तुलनात्मक

विवेचन कर दिया गया होता और खैयाम की रचनाओं के साथ हिन्दी और उर्दू के कविरत्नों की रचनायें भी रख दी गई होतीं। कितना उत्तम होता यदि खैयाम के पूर्ववर्ती और परिवर्ती सूफ़ी कवियो से भी उनका कुछ तुलना कर दी गई होती! परन्तु इस कार्य का भार मैं अब दूसरे सहृदय सुविज्ञो के ऊपर ही छोड़ता हूँ।

मेरे मित्र पं० आनंदमोहन जी वाजपेयी एम० ए० महोदय ने ही इस काव्य के लिखने मे मुझे उत्साहित किया है और उन्हीं ने इनके लिये सामग्रियाँ भी प्रस्तुत की थीं। इसलिये उन्हे मैं हृदय मे धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता। पं० रामचरण जी अग्निहोत्री ने इसकी हस्तलिपि तैयार करने में पर्याप्त परिश्रम उठाया है, अतएव वे भी हार्दिक धन्यवाद के पात्र है।

रायगढ़
विजयदशमी

बलदेव प्रसाद मिश्र

॥ अस्थिरता ॥

इन छंदो को जरा नीचे के छंदो से मिलाकर देखिए:—

देवदूत क्या कोई आकर देगा मुझ दुखिया का साथ।
मेट सकेगा अंक भाल के रोक सकेगा विधि का हाथ॥
क्या है ऐसी शक्ति किसी मे उलट सके प्रारब्ध महान।
कुछ भी तो परिवर्तित कर दे विधि का वैसा विपम विधान॥

× × × × ×

प्रियवर! क्या हम तुम दोनो मिल कर सकते यह नहीं उपाय।
जिससे वह विनष्ट ही कर दे इस दुखमय जग का समुदाय॥
और बनादे फिर से ऐसा नूतन सुषमा-मय संसार।
जिसपर बरबस ही बँध जावे हम सबके हृदयो का प्यार॥

इसी प्रकार मानवी प्रयत्नो के विषय मे उनका कथन है। वे मनुष्य को ईश्वर के हाथ की कठपुतली मानते हैं, उस कुम्हार के हाथ का बनाया हुआ एक मिट्टी का घड़ा मात्र मानते है, उसके इशारे पर चलनेवाले सिनेमा के छाया-चित्र मानते हैं और उन मनुष्यों द्वारा की गई हुई 'इस' 'उस' (लोक-परलोक आदि) की चिंताओं की हँसी उड़ाया करते है। परंतु वे ही एक स्थान पर कहते है.—

झुँझला कर लीं मैंने संयम शपथ न जाने कितनी वार।
किंतु नशे ही मे तो था मैं, जब आए वे शपथ विचार॥
बस बसंत ने जब फैलाया अपना मादक सुमन प्रताप।
एक फूँक ही में उड़ भागे क्षीण शपथ कृश पश्चाताप॥

हृदय ने स्वतः प्रयत्नवान् होना चाहा परंतु अपनी कमजोरी के कारण वह सफल न हो सका और संसार के चक्कर मे आगिरा।

जीवन-ज्योति

[१]

एक बिन्दु था, जो झट गिरकर महासिंधु में हुआ विलीन।
एक धूलकण था, धरती ने जिसे लिया क्षण भर में छीन॥
इस नगण्य मानव जीवन पर इतना गर्व ! अहह ! हा हन्त !
एक मशक था जो आकर के, किसी ओर उड़ गया तुरन्त॥

× × × ×

पर कल धरती में धँसकर हम खोदेंगे अस्तित्व अमेल।
और न जाने कौन हमारे ऊपर खिचेंगे निज खेल॥

× × × ×

[६]

देखो देखो इस अनन्त मरु की अवनी मे रुक कुछ काल।
क्षणभर ही बस जग-वापी से, चखकर जीवन-सुधा रसाल॥
आगे बढा यात्रियो का दल, और हुआ वह शून्य निदान।
आया था वह यहाँ जहाँ से, हुआ वहीं अब अन्तर्धान॥

× × × ×

[७]

यह वह डेरा है मायामय, पाकर जिसमे रुचिर प्रवेश।
करता है विश्राम एक दिन, यमनगरी का पथिक नरेश॥
ज्योंही उठा नरेश तुरत बस, त्योंही काला झाड़ूदार।
अन्य अतिथि के हेतु इसे है कर देता झटपट तैयार॥

× × × ×

[८]

देखो जीर्ण अतिथिशाला यह, कैसा है इसका व्यापार।
दिवस और रजनी के जिसमे, लगे हुए हैं दो दृढ़ द्वार॥
आये इससे साज सजाकर, गर्व भरे सम्राट अथाह।
अपना समय बिताकर इसमें, चले गये फिर अपनी राह॥

× × × ×

Omar came of a family of tentmakers, though this fact is now disputed, but was himself a mathematician, astronomer and a poet He eschewed high offices to which he was preferred by one of his earlier classmates, but lived content on an annuity granted by him and spent his long life in literary persuits He wrote a book on *Algebra, reformed* the calender and devoted his leisure to the composition of his quatrains in which he embalms his stoical and sceptic philosophy The cynical touch in most of his verses does not appear to be due to his disappointments in life, for he had no ambition beyond indulging in his own muse, and no adversity to goad him to consoling misanthropy. He was born in a garden city of Persia nurtured in its genial atmosphere and lengthened his days in the study of the stars and amused his leisure in loitering along the primrose path of poesy

But with all that his reflective genious scanned the mystery of the universe and the sordid mind of man which converted him at once into a sceptic and a cynic which drew him to wine and women as the momentary pastimes of his phantasy

Nothing is known of his private life beyond the bald facts of an eventless life, and there is nothing

मदिरामयी महामाया के पान-पात्र से आ इस ठौर।
हम तुम सम कितने ही बुद्बुद गिरे, गिरेंगे कितने और॥

उलट-फेर

[१३]

पड़ा हुआ था निर्जन वन में एक रणाहत नृपति-कपाल।
मैंने छोटी चिड़िया देखी, बैठी वहीं वृक्ष की डाल॥
पूछ रही थी वह उस सिर से "बतला दे हे अस्थिसमूह!
कहाँ गये प्रासाद मनोरम, कहाँ गये वे तेरे व्यूह!"॥

× × × ×

[१४]

जहाँ भीम अर्जुन रहते थे, आज वहाँ हैं बसे शृगाल।
विक्रम के वैभव पर नाचा करते हैं अब व्याल कराल॥
गज़नी की समाधि-अवनी पर गधे विचरते हैं स्वच्छन्द।
फिर भी उनकी ठोकर खाकर नींद न होती उसकी मन्द॥

× × × ×

मदिरामयी महामाया के पान-पात्र से आ इस ठौर।
हम तुम सम कितने ही बुद्बुद गिरे, गिरेंगे कितने और॥

उलट-फेर

[१३]

पड़ा हुआ था निर्जन वन मे एक रणाहत नृपति-कपाल।
मैंने छोटी चिड़िया देखी, बैठी वहीं वृक्ष की डाल॥
पूछ रही थी वह उस सिर से "बतला दे हे अस्थिसमूह !
कहाँ गये प्रासाद मनोरम, कहाँ गये वे तेरे व्यूह!"॥

× × × ×

[१४]

जहाँ भीम अर्जुन रहते थे, आज वहाँ हैं बसे शृगाल।
विक्रम के वैभव पर नाचा करते हैं अब व्याल कराल॥
गजनी की समाधि-अवनी पर गधे विचरते हैं स्वच्छन्द।
फिर भी उनकी ठोकर खाकर नींद न होती उसकी मन्द॥

× × × ×

है कितना आश्चर्य कि अब तक लाँघ-लाँघ तमसावृत द्वार।
लाखो ज्ञानी, ध्यानी, योगी, भोगी चले गये उस पार॥
किन्तु न लौटा कोई जिससे मिलता सत्य वहाँ का हाल।
जहाँ हमें भी जाना होगा पाकर अन्तिम काल कराल॥

[५५]

मैं बोला आत्मा से "जाओ इस अदृश्य के तुम उस पार।
और यहाँ आकर कुछ कह दो, कैसा है परलोक अपार"॥
आत्मा गई और आकर फिर बोली यह सद्वाक्य महान।
"मैं ही तो हूँ स्वर्ग धरापर, मै ही तो हूँ नरक समान॥"

[५६]

"इच्छाओं की पूर्ति" यही तो कहलाता है स्वर्ग ललाम।
तथा "असन्तोषो की ज्वाला" है बस नरक इसी का नाम॥
इन दोनो ही को फेंको उस अन्धकूप में तुम बरजोर।
हम सब लोग जहाँ से निकले तथा जा रहे हैं जिस ओर॥

× × × ×

टिकते हो तो टिको यहाँ, पर, देखो हो हलका ही भार।
संभव है, इसकी जड़ मे हो, काई मधुर अधर सुकुमार॥
× × × ×

[१६]

गिरती जो प्याले से बूँदे, धरती जिनको करती पान।
कहाँ सूखकर छिप जाती हैं, वे रज के भीतर अनजान ?
संभव है भीतर हों कोई, आँखें व्यथा भरी चुपचाप।
उनपर ढलकर आँसू-सी ये हरती है उनका सन्ताप॥
× × × ×

[२०]

यह गुलाव जो आज बना है इतना सुन्दर लाल विशाल।
पाया है इसने अवश्य ही किसी भूप का रक्त रसाल॥
तथा डिठौना-सा जो स्थित था किसी गाल पर कभी समोद।
तिल वह आज पल्लवित होकर गिरता है उपवन की गोद॥
× × × ×

[२१]

मैंने देखा गीली मिट्टी ठोंक रहा था एक कुम्हार।
और सुनी मैंने रुककर उस मिट्टी की अस्फुट सिसकार॥
इस प्रकार वह बोल रही थी व्यथा भरी वाणी सुकुमार।
"धीमे भाई ! धीमे ही वस, धीमे-धीमे करो प्रहार
× × × × ×

[२२]

जिस प्याले ने अस्फुट स्वर से मुझे सुनाया अपना गा
कभी जीवयुत था अवश्य वह, करता रहता था रस-पा
उसके जड़ ओठो पर मैंने ओठ रखे हैं अपने आज
वे भी कभी सजीव बनेंगे, और सजेंगे चुम्बन-साज।

× × × × ×

[२३]

आदि काल ही से प्रचलित है विश्व-विदित यह बात विशाल।
और अन्त तक भी यह होगी, प्रचलित एक सदृश सब काल॥
"ऐसी ही गीली मिट्टी को नर-तनु के साँचे में डाल।
विधि ने विरचे हैं कितने ही नर-नारी छवि-धाम रसाल॥"

× × × ×

मनस्ताप
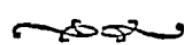
[२४]

यह सत्ता-सागर आया है किस अदृश्य का तज कर पार।
विदित कभी होगा क्या हमको अति रहस्य-मय यह व्यापार ?
हा ! किस दिन कब तक होवेगा इस अनन्त पथ का अवसान !
हा ! यदि कभी कहीं मिल सकता, जीवन का विश्रान्ति स्थान !!

× × × ×

[२५]

क्यों रज की ढेरी पर विधि ने बिखराई छवि-राशि महान ?
वह त्याग कर जाना ही था तो आये ही थे क्यों प्राण ?
हा निष्ठुर विधि ! ज्योंही करता मनुज क्षणिक विश्राम विचार।
काल जगाकर उसको झटपट, कहता है "चल हो तैयार" ॥

× × × ×

[२६]

[illegible] जाता है यह वसन्त भी लेकर अपने ललित गुलाब।
अहो ! बन्द क्यों हो जाती है यौवन की वह रुचिर किताब ?
नव उमगमय बुलबुल जिसने अभी सुनाया था कलगान।
आई यहाँ कहाँ से, गाकर हुई कहाँ अब अन्तर्धान ॥

× × × ×

लीं उखाड़ मेखें अदृष्ट ने, जीवन के सब रस्से खोल।
आशा के दलाल ने उसको बेच दिया कौड़ी के मोल॥

× × × × ×

[३१]

आये थे किस निर्मल नभ से आकर कैसे हुए मलीन!
शान्ति सरीखी वस्तु गँवाकर अब कैसे बन बैठे दीन!!
अश्रु-विन्दुओं से ढलकर हम हृदय ज्वाल में जले तुरन्त।
प्राण-पवन के साथ उड़ाकर, धँसे धूल में फिर, हा हन्त!!

इन छंदो को जरा नीचे के छंदो से मिलाकर देखिए:—

देवदूत क्या कोई आकर देगा मुझ दुखिया का साथ।
मेट सकेगा अंक भाल के रोक सकेगा विधि का हाथ॥
क्या है ऐसी शक्ति किसी मे उलट सके प्रारब्ध महान।
कुछ भी तो परिवर्तित कर दे विधि का वैसा विषम विधान॥

× × × × ×

प्रियवर! क्या हम तुम दोनो मिल कर सकते यह नहीं उपाय।
जिससे वह विनष्ट ही कर दे इस दुखमय जग का समुदाय॥
और बनादे फिर से ऐसा नूतन सुषमा-मय संसार।
जिसपर बरबस ही बँध जावे हम सबके हृदयो का प्यार॥

इसी प्रकार मानवी प्रयत्नो के विषय मे उनका कथन है। वे मनुष्य को ईश्वर के हाथ की कठपुतली मानते हैं, उस कुम्हार के हाथ का बनाया हुआ एक मिट्टी का घड़ा मात्र मानते है, उसके इशारे पर चलनेवाले सिनेमा के छाया-चित्र मानते हैं और उन मनुष्यों द्वारा की गई हुई 'इस' 'उस' (लोक-परलोक आदि) की चिंताओं की हँसी उड़ाया करते है। परंतु वे ही एक स्थान पर कहते है.—

झुँझला कर लीं मैंने संयम शपथ न जाने कितनी बार।
किंतु नशे ही मे तो था मैं, जब आए वे शपथ विचार॥
बस बसंत ने जब फैलाया अपना मादक सुमन प्रताप।
एक फूँक ही में उड़ भागे क्षीण शपथ कृश पश्चाताप॥

हृदय ने स्वतः प्रयत्नवान् होना चाहा परंतु अपनी कमजोरी के कारण वह सफल न हो सका और संसार के चक्कर मे आगिरा।

वार्त्तालाप

[३२]

एक समय जब बीत रही थी व्रत वाली शिवरात्रि ललाम।
जागृत रहना भूल गई जब, करते थे सुख से विश्राम ॥
पहुँचा तब एकाकी ही मैं कुम्भकार के घर तत्काल।
देखे मिट्टी के पुतले बहु अपने चारों ओर रसाल ॥

[३३]

भाँति-भाँति के पुतले थे वे धरे विविध आकार-प्रकार।
कोई थे अवनी पर कोई दीवारों पर थे छविसार॥
कोई ठक् ठक् ठक् ठन ठन कर गुना रहे थे अपने बोल।
कोई मौन बने, सुनने को कान रहे थे अपने खोल॥

[३४]

कहा एक ने "इस मिट्टी को अपने इस साँचे में डाल।
कुम्भकार ने रच रक्खा है मेरा ऐसा रूप रसाल॥
इसी रूप की यह मिट्टी फिर मिट्टी मे मिल एक समान।
बन जावेगी निश्चय ही; क्या अर्थ-हीन यह क्रिया महान॥

[३५]

कहा अपर ने "पिया कभी था जिसमे भरकर सु-रस सहास।
नटखट बालक भी न फोड़ता वह प्याला—वह स्मृति-उल्लास॥
तब फिर जिसने हमे गढ़ा है देकर ऐसा रूप रसाल।
क्या वह कभी नष्ट कर देगा हमको, होकर क्रुद्ध कराल?

[३६]

फिर कुछ देर बाद बोला यों एक कुम्भ जो था कुछ वङ्क।
"लोग हँसी करते हैं मुझको लखकर विकृत और सकलङ्क॥
किन्तु दोष मेरा क्या इसमे, यह तो कुम्भकार का काम।
मुझे बनाते समय हिल उठे होंगे उसके हाथ ललाम॥

[३७]

कहा अपर ने “सुनते हैं वह कुम्भकार दिखला कर रोष।
उन कुम्भो को नरक भेजता जो न पके उसके ही दोष॥
नहीं, नहीं, यह न्याय नहीं है, वह न करेगा ऐसा काम।
वह सज्जन है, वह सज्जन है, देगा सदा सुखद परिणाम॥

[३८]

कहा एक ने अस्फुट स्वर से “तुम सब करलो विविध विवाद।
सूख गई है मेरी मिट्टी सूख चुका मेरा आह्लाद॥
मुझमे तो बस भर दो वह ही चिर-परिचित रस ललित ललाम।
जिससे फिर से मैं बन जाऊँ पहिले-सा रस-मय सुख-धाम॥

[३९]

इस पर गरज गरज कर बोला एक कुम्भ जो था वाचाल।
शायद उसमे पडा हुआ था कुछ वेदान्त सु-रस उस काल॥
“कुम्भ और इस कुम्भकार के होते है जो ये व्याख्यान।
कहो कौन है कुम्भ, कौन है कुम्भकार वह, हे मतिमान!

[४०]

पात्र सभी जब यो करते थे आपस मे बाते अभिराम।
क्षीण चन्द्र ने नभ मे बढ़कर भेजा वहाँ प्रकाश ललाम॥
देखा उनने कुम्भकार को अँगडाई लेते इस क्षण।
कहा इशारों से सबने “बस, बनो मौन मिट्टी [illegible]॥

नियति चक्र

[४१]

विधि ने पहिले ही रच रक्खा आदि अन्त का सुखकर योग।
आदिम मिट्टी से ही विरचित होंगे अन्तिम जग के लोग॥
अन्तिम शस्य तथा देवेगा, आदिम तरुवर बीज ललाम।
और प्रलय ही फिर बाँचेगा, लेख सृष्टि के वे अभिराम॥

× × × × ×

[४२]

लिखती ही जाती है उँगली, बढ़ती ही जाती अविराम।
लाखों यत्नों से भी उसकी हो सकती कुछ रोक न थाम॥
करो चाटुकारी चाहे तुम, चाहे अश्रु नदी दो डाल।
किन्तु न थोड़ा भी मिट सकता, निष्ठुर विधि का लेख कराल॥

× × × ×

[४३]

दिखा रहा है मायापति निज रुचिर सिनेमा खेल ललाम।
सूर्य नहीं है, बिजली वाला यह तो है प्रदीप अभिराम॥
तथा यहाँ जिसके सकाश से, हम सब छाया चित्र समान।
जग-परदे पर घूम-घूम कर करते रहते कृत्य अजान॥

× × × ×

[४४]

बिछी हुई शतरंज अहा! यह कहते हो जिसको संसार।
दिवस निशा हैं दो रंगे घर, हम सब हैं मुहरे छबिसार॥
बेबस हमे चलाता है वह, शह देकर करता है मात।
क्रम-क्रम से सबको भर लेता, डिब्बे मे फिर पिछली रात॥

× × × ×

[४५]

भोग रोग के विषम योग से रच रच करके गेंद अनेक।
यहाँ वहाँ से, वहाँ यहाँ से, पहुँचा रहा खिलाड़ी एक॥
लाया इस मैदान बीच है, तुमको जो बनकर अखिलेश।
वही खिलाडी जान रहा है, क्या इन खेलों का उद्देश॥

× × × ×

[४६]

तजकर ईश्वर की आज्ञा से अपने कारागृह के द्वार।
बिजली के घोडे पर चढ़कर जब मैं आ पहुँचा इस ओर॥
मिला मुझे जो यहाँ नियति से बँधा हुआ जीवन का काम।
वृष के गृह से गुरु ने उसमें, थोडी मदिरा दी है डाल॥

× × × ×

[४७]

जिसके नीचे उपज-उपज कर हम सब बनते धूल निदान।
उसी अधोमुख पान-पात्र सम, नभ को मन ने मान महान?

[४४]

बिछी हुई शतरंज अहा! यह कहते हो जिसको संसार।
दिवस निशा हैं दो रंगे घर, हम सब हैं मुहरे छबिसार॥
बेवस हमे चलाता है वह, शाह देकर करता है मात।
क्रम-क्रम से सबको भर लेता, डिब्बे में फिर पिछली रात॥

× × × ×

[४५]

भोग रोग के विषम योग से रच रच करके गेंद अनेक।
यहाँ वहाँ से, वहाँ यहाँ से, पहुँचा रहा खिलाड़ी एक॥
लाया इस मैदान बीच है, तुमको जो बनकर अखिलेश।
वही खिलाड़ी जान रहा है, क्या इन खेलों का उद्देश॥

× × × ×

[४६]

तजकर ईश्वर की आज्ञा से अपने कारागृह के छोर।
बिजली के घोड़े पर चढ़कर जब मैं आ पहुँचा इस ओर॥
मिला मुझे जो यहाँ नियति से बँधा हुआ जीवन का काल।
वृष के गृह से गुरु ने उसमें, थोड़ी मदिरा दी है डाल॥

× × × ×

[४७]

जिसके नीचे उपज-उपज कर हम सब बनते धूल निदान।
उसी अधोमुख पान-पात्र सम, नभ को मन मे मान महान॥

नियति चक्र

[४१]

विधि ने पहिले ही रच रक्खा आदि अन्त का सुखकर योग।
आदिम मिट्टी से ही विरचित होंगे अन्तिम जग के लोग॥
अन्तिम शस्य तथा देवेगा, आदिम तरुवर बीज ललाम।
और प्रलय ही फिर बाँचेगा, लेख सृष्टि के वे अभिराम॥

× × × × ×

[४२]

लिखती ही जाती है उँगली, बढ़ती ही जाती अविराम।
लाखों यत्नों से भी उसकी हो सकती कुछ रोक न थाम॥
करो चाटुकारी चाहे तुम, चाहे अश्रु नदी दो डाल।
किन्तु न थोड़ा भी मिट सकता, निष्ठुर विधि का लेख कराल॥

× × × ×

[४३]

दिखा रहा है मायापति निज रुचिर सिनेमा खेल ललाम।
सूर्य नहीं है, बिजली वाला यह तो है प्रदीप अभिराम॥
तथा यहाँ जिसके सकाश से, हम सब छाया चित्र समान।
जग-परदे पर घूम-घूम कर करते रहते कृत्य अजान॥

× × × ×

नियति चक्र

[४१]

विधि ने पहिले ही रच रक्खा आदि अन्त का सुखकर योग।
आदिम मिट्टी से ही विरचित होंगे अन्तिम जग के लोग॥
अन्तिम शस्य तथा देवेगा, आदिम तरुवर बीज ललाम।
और प्रलय ही फिर बाँचेगा, लेख सृष्टि के वे अभिराम॥

× × × × ×

[४२]

लिखती ही जाती है उँगली, बढ़ती ही जाती अविराम।
लाखों यत्नों से भी उसकी हो सकती कुछ रोक न थाम॥
करो चाटुकारी चाहे तुम, चाहे अश्रु नदी दो डाल।
किन्तु न थोड़ा भी मिट सकता, निष्ठुर विधि का लेख कराल॥

× × × ×

[४३]

दिखा रहा है मायापति निज रुचिर सिनेमा खेल ललाम।
सूर्य नहीं है, बिजली वाला यह तो है प्रदीप अभिराम॥
तथा यहाँ जिसके सकाश से, हम सब छाया चित्र समान।
जग-परदे पर घूम-घूम कर करते रहते कृत्य अजान॥

× × × ×

[४४]

बिछी हुई शतरंज अहा! यह कहते हो जिसको संसार।
दिवस निशा हैं दो रंगे घर, हम सब हैं मुहरे छबिसार॥
बेबस हमे चलाता है वह, शह देकर करता है मात।
क्रम-क्रम से सबको भर लेता, डिब्बे में फिर पिछली रात॥

× × × ×

[४५]

भोग रोग के विषम योग से रच रच करके गेंद अनेक।
यहाँ वहाँ से, वहाँ यहाँ से, पहुँचा रहा खिलाड़ी एक॥
लाया इस मैदान बीच है, तुमको जो बनकर अखिलेश।
वही खिलाड़ी जान रहा है, क्या इन खेलों का उद्देश॥

× × × ×

[४६]

तजकर ईश्वर की आज्ञा से अपने कारागृह के छोर।
बिजली के घोड़े पर चढ़कर जब मैं आ पहुँचा इस ओर॥
मिला मुझे जो यहाँ नियति से बँधा हुआ जीवन का काल।
वृष के गृह से गुरु ने उसमें, थोड़ी मदिरा दी है डाल॥

× × × ×

[४७]

जिसके नीचे उपज-उपज कर हम सब बनते धूल निदान।
उसी अधोमुख पान-पात्र सम, नभ को मन में मान महान॥

क्यों तुम उससे माँग रहे हो, रक्षा की भिक्षा अविराम।
घूम रहा वह भी तो बेबस, हम तुमही-सा आठों याम॥

× × × ×

[४८]

भूमण्डल से उठकर पहुँचा मैं तारा-मण्डल के पास।
और वहाँ भी पाया सब से ऊँचे सिंहासन पर वास॥
सुलझाईं मैंने बहुतेरी ज्योतिष्पथ वरिष्ट की गाँठ।
पर उलझी ही रही आज तक मनुजों के अदृष्ट की गाँठ॥

[४६]

कैसा है यह द्वार कि जिसकी कुंजी पा न सका मैं मित्र।
कैसा यह पर्दा है जिसने छिपा दिया वह पार विचित्र॥
मेरी और तुम्हारी चर्चा, रही यहाँ कुछ थोड़ी देर।
फिर 'मैं तुम' अन्तर्हित होकर केवल बने धूल के ढेर॥

[५०]

मैंने धरती से यह पूछा पर वह हुई मौन गंभीर।
गया उदधि तट पर वह तो था, श्याम विरह मे श्याम शरीर॥
तब आँखें ऊँची कर मैंने, आशा से देखा आकाश।
पर रजनी अँचल में आवृत पाया उसका दिवस प्रकाश।

[५१]

तब आकुल हो मेरे दोनो हाथ उठे उस ओर निदान ।
जिधर छिपे थे जगसञ्चालक माया का रच के व्यवधान ॥
तमोमयी रजनी में मैंने चाहा देखूँ ज्योति कलाप ।
गगनगिरा ने कहा "मूर्ख ! तू देख उसे अपने में आप ॥"

[५२]

बस, फिर मैं झटपट पहुँचा इस मिट्टी के प्याले के पास ।
और इसी ने शीघ्र बुझाई, जीवन तत्व-ज्ञान की प्यास ॥
कोमल स्वर से बोला यह, "बस, पियो-पियो जब तक हो प्रान ।
मरकर फिर न फिरोगे ऐसे, इस अवनी पर हे मतिमान !"

[५३]

विगत दिवस ने ही रच रक्खी इस दिन की मस्ती अभिराम ।
तथा भविष्य दिवस की जड़ता, जीवन जीत हार विश्राम ॥
बस, फिर क्या है पियो मस्त बन क्योंकि तुम्हे यह है अज्ञात ।
आये यहाँ कहाँ से क्यो, अब जाते कहाँ और क्यों तात !

स्वर्ग-नरक

[५४]

है कितना आश्चर्य कि अब तक लाँघ-लाँघ तमसावृत द्वार।
लाखों ज्ञानी, ध्यानी, योगी, भोगी चले गये उस पार॥
किन्तु न लौटा कोई जिससे मिलता सत्य वहाँ का हाल।
जहाँ हमें भी जाना होगा पाकर अन्तिम काल कराल॥

[५५]

मैं बोला आत्मा से "जाओ इस अदृश्य के तुम उस पार।
और यहाँ आकर कुछ कह दो, कैसा है परलोक अपार"॥
आत्मा गई और आकर फिर बोली यह सद्वाक्य महान।
"मैं ही तो हूँ स्वर्ग धरापर, मै ही तो हूँ नरक समान॥"

[५६]

"इच्छाओं की पूर्ति" यही तो कहलाता है स्वर्ग ललाम।
तथा "असन्तोषो की ज्वाला" है बस नरक इसी का नाम॥
इन दोनो ही को फेंको उस अन्धकूप में तुम बरजोर।
हम सब लोग जहाँ से निकले तथा जा रहे हैं जिस ओर॥

× × × ×

[५७]

नरकों से तुम भय करते हो और स्वर्ग की रखते आस।
किन्तु कौन लखकर आया है स्वर्ग—नरक के वे आवास॥
"यह जीवन उड़ता जाता है" निश्चित है बस इतनी बात।
फूल फूलकर एक बार ही झड़ जाता सदैव को तात!

× × × ×

[५८]

वृथा नरक का भय है, देखे किसने वे सब नरक-निवास।
तू तो मदिरा मदिराक्षी की लख ले मनभर रूप उजास॥
देख विकच पाटल की शोभा आकर, छोड़ नरक का ध्यान।
अरे! जहाँ प्रेमी हो ऐसा नरक स्वर्ग से बढ़कर मान॥

× × × ×

[५९]

नभ क्या है! वह तो है मेरे अस्थिर जीवन का दृढ़ पाश।
सागर क्या है! वह है मेरे अश्रु-बिंदु का तरल प्रकाश॥
नरक! अहो वह है चिनगारी मेरी विषम व्यथा की एक।
और स्वर्ग! वह है जीवन के सुखद समय की झाँकी एक॥

शुष्क ज्ञान

[६०]

दोनों लोको की चिन्ता में जिनका बीता समय महान।
कहाँ तर्कवागीश गये वे, कहाँ सन्त वे ज्ञान-निधान॥
तिरस्कार पाकर बिखरे है, उनके वे सिद्धान्त समूल।
और उन्हीं के मुख मे देखो भरी आज धरती की धूल॥

× × × ×

[६१]

भक्तों के वे भाव मनोरम और ज्ञानियो के सद्ज्ञान।
तथा सूक्तियाँ भी सन्तों की हैं केवल कोरे आख्यान॥
निद्रा से कुछ काल जागकर जिन्हे सुना मित्रों के बीच।
जाकर गोद महानिद्रा की, लीं उनने फिर आँखें मीच॥

× × × ×

[६२]

जाता हूँ मैं भी मंदिर मे, करता हूँ मैं भी कुछ ध्यान।
किन्तु सत्य तो यह है, मेरे हैं आराध्य न श्रीभगवान॥
चुरा चुका था एक चटाई जीर्ण-शीर्ण वह हुई मलीन।
इसी घात में आता हूँ, कब मैं ले भागूँ अन्य नवीन॥

× × × ×

[६३]

मिला न कोई लाभ ज्ञान से देखे मस्त सदा मतिमन्द।
करदो तुम भी मादक रस से अपना विषम ज्ञान-पथ वन्द॥
मस्त मूर्खता ही में हूँ मैं करके दूर ज्ञान का छोर।
संभव है इससे ही कर दें, विभु मुझपर करुणा की कोर॥

× × × ×

[६४]

जहाँ अभ्युदय है बस समझो उसी ओर है राग-द्वेष।
वही असाधु कहाया जिसने धारण किया साधु का वेष॥
सच्चा ज्ञान उसे ही कहिये पाकर जिसको सन्त सुजान।
जग में रहकर भी इस जग से रखते नहीं जान-पहिचान॥

× × × ×

[६५]

ज्ञानी कहलाने वाले हैं इस जग में कुछ गर्दभराज।
उनकी संगति में जाकर के तू भी वनजा गर्दभ आज॥
जग के जीवों मे कुछ ऐसा लगा सभ्यता का है रोग।
लोकलीक जिसने त्यागी है गधा उसे कहते हैं लोग॥

× × × ×

[६६]

अंधा रूपसुधा क्या जाने वहरे को क्या सुर का ज्ञान।
तपसी क्या पहिचान सकेगा मादकता का मूल्य महान॥

मस्ती की इच्छा है तो तज यह सूखी विरक्ति की चाह।
दम्भी भक्तों के क्रन्दन से बढ़कर है विरही की आह॥

नक़द धर्म

[६७]

कोई बने हुए है व्याकुल पाने को जगती के ताज।
चाह रहे है कोई पाना, अमरपुरी के सुखकर साज॥
छोड़ छोड़ उनकी बातें तू नक़द माल का कर सत्कार।
यही बुद्धिमानी कहती, है छलनामय उधार का प्यार॥

× × × ×

[६८]

आशा! आशा! जगकी आशा के हित क्यों इतना अनुताप।
वह आशा तो पावक मे जल, बनती भस्म आपही आप॥
भस्म न हुई और पनपी वह, तो कुछ क्षण देकर उल्लास।
उड़ जाती है जैसे उड़ता हिमकण तज मरु का आवास॥

× × × ×

[६९]

जो आगत–उत्सव आतुर है तथा जिन्हे है कल का ध्यान।
ऐसे उन दोनो प्रकार के मनुजो का करके आह्वान॥
अलखमंच से उपदेशक का उठता है यह उच्च निनाद।
"मूर्ख! यहाँ या वहाँ तुम्हारे लिये कहीं भी नहीं प्रसाद"॥

× × × ×

[७०]

धूल धूल वस धूल रहेगी, होगा सब कुछ धूल निदान।
मदिरा गायक गीत आदि सब, होगे उसमे अन्तर्धान॥
तव फिर जब तक इस जीवन में, लगता नहीं धूल का रोग।
तव तक तो करलो मनमाना, अपनी पूँजी का उपभोग॥

× × × ×

[७१]

यह मदिरा भी शून्य वनेगी शून्य वनेंगे अधर ललाम।
यह तो निश्चित ही है फिर क्यो इसमे कुछ अचरज का काम?
अरे! शून्य ही तो जग का है आदिम भी अन्तिम भी धाम।
तू है आज वना जो कल था, होगा कल वह ही परिणाम॥

× × × ×

[७२]

कल क्या होगा इस उलझन की चिन्ताओं को करके चूर।
दैवी और मानवी सवही अभिलाषाएँ कर दे दूर॥

तू तो बस उस मदिरावाली मदिराक्षी का कर ले ध्यान।
और अँगुलियाँ उलझा ले तू उसके केशों में मतिमान!!

× × × ×

[७३]

जीवन-ज्योति न खो तू प्यारे! 'इस' 'उस' की उलझन को छोड़।
व्यर्थ वितंडावादों से तू झटपट अब अपना मुँह मोड़॥
मादक अंगूरों को लेकर हँस-हँस कर, कर हृदय विकास।
कुकर्मों की झूठी आशा में, बनता है क्यों मित्र! उदास॥

× × × ×

[७४]

रुचिर स्वर्ग के बन्द किवाड़ों पर देकर निज दृष्टि विलोल।
क्यो तू अपना 'आज' खो रहा पड़ा हुआ इस भाँति अडोल॥
अरे! आज तो तू रखता है अपना कुछ अस्तित्व उदार।
कल तो तूही नहीं रहेगा 'कल' पर फिर क्यो इतना प्यार॥

× × × ×

[७५]

जीवन की है जटिल समस्या पड़ो न इस उलझन में मित्र!
तुम्हे पूछकर तो न दिया है विभु ने यह अस्तित्व विचित्र॥
तब फिर जब यह जीवन पाया और मिले है सुखद सुयोग।
तो कर लो आजीवन सुख से, सुखकर भोगो का उपभोग॥

× × × ×

[७६]

लोग कहा करते हैं मैंने गणना के नव-नियम निकाल।
घटा दिया संवत्सर ही को, स्वल्प हुआ जो रहा विशाल॥
नहीं, नहीं, मैंने तो केवल दूर किये दोही छल धाम।
मृत-अतीत अव्यक्त-भविष्यत्, शेष यथावत् हैं अभिराम॥

× × × ×

[७७]

बन्धन रख न किसी का प्यारे! बन आसक्ति हीन मतिमान।
असन्तोष को दूर वहादे, त्याग भूठ के सकल विधान॥
मनमानी कर, किन्तु सता मत किसी जीव को किसी प्रकार।
बस फिर तेरे लिये खुले हैं निश्चय शान्त स्वर्ग के द्वार॥

× × × ×

[७८]

कहते हो नूतन प्रभात, है लाता संग सहस्रो फूल।
किन्तु कहो वह रख आता है, कल के फूल कहाँ, किस कूल॥
लाता है पाटलप्रसून जो, मृदु वसन्त का यह नव मास।
वही यहाँ से ले जावेगा, लेनिन-पौरुष, ज़ार-विलास॥

[७९]

लेता है तो ले जाने दो, हमको क्या उन सब से काम।
जायँ ज़ार लेनिन से मानव, जायँ शिवाजी या संग्राम॥

अभिमानी औरंग अकड़ ले, दिखला ले दारा औदार्य।
जाते हैं तो जाने दो अब, अपने को उनसे क्या कार्य॥

[८०]

आओ मेरे संग जहाँ हैं फैले रुचिर वनस्पति जाल।
मिलते जहाँ मरुस्थल के सँग शस्य-श्यामल खेत रसाल॥
जहाँ आपही विस्मृत होता, नीच-ऊँच का सारा ज्ञान।
विकसित रहती जहाँ सदा ही, श्याम सखा की वंशी तान॥

[८१]

वहाँ एक शाखा के नीचे होवे कविता ग्रन्थ रसाल।
मदिरा का प्याला हो, रोटी का कुछ टुकड़ा हो उस काल॥
तथा वहाँ उस निर्जन मे बस, मदिराक्षी का हो मृदुगान।
तो उस ऊसर पर न्यौछावर, करदूँ सौ-सौ स्वर्ग महान॥

× × × ×

!! गाइकता !!

मदिरा

[८२]

यौवन में उत्साहित होकर मैंने देखे सन्त अनेक।
और ध्यान से उनके प्रवचन सुने तर्क-संयुत सविवेक॥
किन्तु न कुछ भी समझ सका मैं, मिली न इस रहस्य की थाह।
गया वहाँ जिन पैरों, लौटा उनही पैरों उसही राह॥

[८३]

उनकी संगति मे जो मैंने बोए ज्ञान-बीज अभिराम।
तथा बढ़ाता रहा जिन्हे मैं सहकर वर्षा, सरदी, घाम॥
उन्हे पकाकर मैंने पाया केवल यह ही शस्य महान।
"आया जल-प्रवाह-सा जग मे, जाऊंगा अब पवन समान॥"

[८४]

क्या जाने कैसे प्रदेश से क्या जाने क्यों किसके जोर।
ध्येय हीन जल के प्रवाह-सा, बहता आया हूँ इस ओर॥
और छोड़कर मृग-तृष्णा-सी, इस ऊसर अवनी के स्थान।
बहा जा रहा हूँ क्या जाने, कहाँ आज मैं पवन समान॥

[८५]

"किन लोकों से भगकर आए! किसका पाया था आदेश!
अनुमति की परवाह न कर अब भागे जाते हो किस देश॥"
वृथा, वृथा, ये प्रश्न वृथा हैं वृथा मान-अपमान विचार।
इस मदिरा की घूँटों मे बस, डूबेगा स्मृति का संसार॥

× × × ×

[८६]

यह वह मोदमयी मदिरा है जिसकी प्रखर तर्क की धार।
आप बहा सकती है सबही सम्प्रदाय के भेद अपार॥

यह वह अद्भुत पारस मणि है जिसका केवल करके ध्यान।
जीवन का लोहा बन जाता क्षणभर ही में कनक समान॥

× × × ×

[८७]

इस मादक रस को तुम समझो ईश्वरीय उत्कर्ष-निवास।
देखें कैसा नर है वह जो कहता इसे पाप का दास॥
पियो प्रेम से इसको यह तो है विभु ही का रुचिर प्रसाद।
शाप? शाप यदि हो यह, तो भी है विभु-विरचित ही उन्माद॥

× × × ×

[८८]

नहीं भोग का रोग मुझे है तथा न रसना रस की चाह।
मानव-धर्म भंग करने का भी कुछ नहीं यहाँ उत्साह॥
मैं हूँ उस मदिरा का प्रेमी जिसकी शुभ मादक रस-धार।
मुझ में आकर मुझे मिटादे, सरसादे आनन्द अपार॥

× × × ×

[८९]

स्थिर नियमों से जाँचा मैंने 'अस्ति-नास्ति' का भेद विशाल।
तर्क-कसौटी पर कस देखा, यह आकाश और पाताल॥
किन्तु दिखाई पड़ा कहीं यदि गहरे गोने का सुस्थान।
तो बस था कुछ और न, वह था मदिरा ही का पात्र महान॥

× × × ×

---

[६०]

प्यार करें चाहे विभु मुझपर चाहे दें मुझको फटकार।
किन्तु न मैं हिचकूँगा कहते अपना यह दृढ़ सत्य विचार॥
पानभूमि वह परम धन्य है, हो जिसमे कुछ दिव्य उजास।
अन्धकार हो जिस मन्दिर में कौन जायगा उसके पास!

× × × ×

[६१]

बकने दो वक्र-वक्ताओं को मुझे नहीं उनसे कुछ काम।
अभिलाषा है बस नस नस मे, मदिरा रस भर उठे ललाम॥
क्योंकि उसी रस की कुंजी से वे दृढ़ द्वार खुलेंगे आप।
जिन्हें बन्द पाकर बेबस वे वक्तागण कर रहे प्रलाप॥

× × × ×

[६२]

यद्यपि मम सर्वस्व हरण कर लीं इसने अब आँखें फेर।
फिर भी इस पर ही रखता हूँ श्रद्धामय सुमनों के ढेर॥
होता है आश्चर्य मुझे तो लख इसका विक्रय-व्यापार।
मानिक-सी मदिरा देकर कुछ कौड़ी ही पाता कलवार॥

× × × ×

[६३]

वृद्धा बुद्धि-सखी को मैंने अब तो रख छोड़ा है दूर।
मदिरा ही से अब तो मैंने नाता जोड़ा है भरपूर॥

कहिए कैसी है यह हिम्मत, कहिए कैसी है यह चाह।
जिसे देखना हो सो देखे बूढ़े का यह नवल विवाह॥

× × × ×

[९४]

गये गुलाब सुमन निज लेकर बाबर से भूपाल अपार।
जहाँगीर से नृपतिवरो का कहाँ छिपा प्याला सुकुमार।
किन्तु आज भी चमक रहा है दाखो मे मानिक छविधाम॥
जिसके रस से भरे हुए हैं अब भी वहु उद्यान ललाम।

× × × ×

[९५]

है खदान मे मानिक या है तन मे जीवन-ज्योति ललाम।
या आँसू के भीतर पैठा व्यथित हृदय-शोणित अभिराम॥
शरद जुन्हाई मे रवि आया या जल बीच गुलाब रसाल।
उज्वल-प्याले के भीतर है इस प्रकार की मदिरा लाल॥

× × × ×

[९६]

कहते हो मैं मदिरा त्यागूँ! तजदूँ मदिराक्षी का ध्यान?
तो फिर विभु ने इन्हे बनाकर क्यो विरचा अनुराग महान।
कहाँ निपेध? यहाँ तो छविमय भरा धरा मंजुल कल्याण॥
इनके सेवन में बस समझो, इनका ही अस्तित्व प्रमाण।

पियो पियो
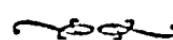
[९७]

उपदेशक है मौन सभी पर सुनलो एक दिव्य संदेश।
मंजुवादिनी बुलबुल कहती पाटल से "प्रियतम ! हृदयेश।
मदिरा मदिरा आज गुलाबी मदिरा का तुम करलो पान।
हँस हँस कर कपोल विकसाओ सरसाओ आनन्द महान॥"

× × × ×

[९८]

नव वसन्त के प्रबल अनल मे जल जाने दो पश्चात्ताप।
भरो भरो प्याले मे मदिरा दूर करो सारे सन्ताप॥
देखो उड़ा जा रहा है यह गगन-विहारी समय-विहंग।
शीघ्र शीघ्र तुम करो शीघ्रता सदा क्षणिक है इसका संग॥

× × × ×

[९९]

ऊँचा मुख कर अरुणोदय मे जैसे रुचिर जपा के फूल।
वह स्वर्गीय मधुर मादक रस चाहा करते हैं सुख मूल॥
तू भी बन अनुरक्त उसी विधि जब तक है श्वासो का पाश।
फिर तो रिक्तपात्र सा तुझको उलटा ही देगा आकाश॥

× × × ×

[१००]

त्यागी लोगों की उन लंबी बातों का करके विश्वास।
अथवा अमरपुरी के मंजुल सुख पुंजों की करके आस॥
क्या मैं त्याग न करदूँ अपनी सुखमय जीवन-सुधा ललाम?
विश्वविदित है जब हम सबका अन्तिम धूल भरा परिणाम!

× × × ×

[१०१]

पीता हूँ मैं क्योंकि यही था मेरे लिये महेश-विधान।
नियति-लेख को उलटा देना होगा अहह! अनर्थ महान॥
वृथा दे रहे हो तुम मुझको स्वर्ग-सुखों का लालच तात!
क्या है वहाँ? वहाँ भी तो है मदिरा मदिराक्षी की बात॥

× × × ×

[१०२]

अन्न-वस्त्र तक ही परिमित रख अपने वे सब यत्न महान।
मत खो यह अमूल्य जीवन तू करले सुख से मदिरा पान॥
नरक-गमन निश्चित है तो बस, वृथा स्वर्ग के हेतु प्रयास।
लिखा हुआ है स्वर्ग-गमन यदि तो फिर वृथा नरक का त्रास॥

× × × ×

[१०३]

चाहे जो कुछ कहो—करूँगा मैं न कभी मदिरा का त्याग।
होता है निषिद्ध-पथ पर ही मानव जीवन का अनुराग॥

पुण्यवान के लिये कभी क्या होना है करुणा-संचार ?
दया पापियों ही के हित है, फिर क्यों इतना सोच विचार ?

× × × ×

[१०४]

संध्या में बिजली-सा बनकर खोल अतिथिशाला के द्वार।
अभी अभी ही एक अनोखा देवदूत आया इस पार॥
अपना पात्र बढ़ाकर आगे, वह बोला "चख सु-रस ललाम"।
मैने चखा, अहो! वह तो थी प्रमुदमयी मदिरा अभिराम॥

× × × ×

[१०५]

पियो क्योंकि यह मदिरा ही तो है अविनश्वर जीवन-मित्र।
पियो क्योंकि यह ही है निश्चय जीवनसुख-सर्वस्व विचित्र॥
चिताओं की परम दाहिका यह ही तो है अग्नि महान।
दुःख-अनल के हेतु यही है किंतु सुधामय सलिल समान॥

× × × ×

[१०६]

प्रिये! प्रिये! फिर से भर दे तू प्याले मे वह वस्तु रसाल।
बह जावें सब भय भविष्य के, सब अतीत के खेद कराल॥
कल! आहा कल की बातें क्यो? कल क्या होगा किसको ध्यान?
शायद कल मैं ही बन जाऊँ काल-अतिथि, तज जग छविवान॥

× × × ×

[१०७]

दिया सभी को है ईश्वर ने विषम-दशामय जीवनदान ।
सबको करना ही पड़ता है उस कड़वी मदिरा का पान ॥
सब बेबस हैं रची सभी मे हैं विभु ने त्रुटियाँ भरपूर ।
फिर मैं लज्जा से क्यों कर दूँ अपनी कड़वी मदिरा दूर ?

× × × ×

[१०८]

जब दुखमय अंतिम अवसर पर पाकर तुझको सरिता-तीर ।
श्याम सु-रस प्याले में भरकर देगा कालदूत गंभीर ॥
और बुलावेगा आत्मा को ओठों पर जब वह चुपचाप ।
पीना ही होगा तुझको तब उसका वह मादक रस आप ॥

!! भावना !!

आकांक्षा

[१०६]

अंत समय जल के बदले बस, देना वह मादक-रस मित्र!
और उसी रस से धो देना मेरा मृतक शरीर विचित्र॥
हरे द्रुमों की ललित लताओं से लपेट कर फिर स-विनोद।
रख देना उसको प्रशान्तिमय किसी ललित उपवन की गोद॥

[११०]

प्रकटेंगी मेरी समाधि से द्राक्षावल्लरियाँ सुविशाल।
तानेंगी वितान ही सा जो अपना हृदय-विमोहक जाल॥
राग-हीन ज्ञानी भी कोई यदि जा पहुँचेंगे उस ओर।
तो उनकी छवि से विमुग्ध बन होंगे निश्चय प्रमुद-विभोर॥

× × × ×

[१११]

मरु-अवनी ने छिपा रखा है कहाँ सुधा का स्रोत ललाम।
इच्छा है, दिखला दे उसकी थोड़ी सी झाँकी अभिराम॥
फिर तो उछल पड़ेगा सुख से, प्यासा व्याकुल पथिक-समाज।
दवा शस्य ज्यों उठ पड़ता है नभ में लख मेघों के साज॥

× × × ×

[११२]

देवदूत क्या कोई आकर देगा मुझ दुखिया का साथ?
मेट सकेगा अंक भाल के, रोक सकेगा विधि का हाथ?
क्या है ऐसी शक्ति किसी में, उलट सके प्रारब्ध महान!
उलटे यदि न बदल ही दे कुछ विधि का वैसा विषम विधान॥

× × × ×

[११३]

प्रियवर ! क्या हम तुम दोनों मिल कर सकते यह नहीं उपाय ?
जिससे विधि ही स्वयं मिटादे इस दुखमय जग का समुदाय ?

और बनादे फिर से ऐसा नूतन सुषमामय संसार।
जिसपर बरबस ही बँध जावे हम सबके हृदयो का प्यार !!

× × × ×

[११४]

आता है नव वर्ष किंतु वह गाता वही पुरातन गान।
मन कहता है ढूँढ़ें चल कर कहीं शान्त एकान्त स्थान॥
जहाँ विटप-वर की शाखाएँ जाती है धरती पर भूल।
विभु की दो विभूतियो का यो होता जहाँ मिलन सुखमूल॥

× × × ×

[११५]

इस उपवन मे आज चन्द्र यह झाँक रहा है मुझे सन्हास।
आया था कल, आवेगा कल, दिखलाकर निज रूप उजास॥
घटे बढ़ेगा एक सदृश ही लखा करेगा यह उद्यान।
पा न सकेगा किंतु मुझे वह, होऊँगा जब धूल निदान॥

[११६]

लसी चंद्र-सी चंद्रमुखी ! तुम जब नभ से आकर स-विलास।
नये अतिथि को सु-रस पिलाने पहुँचोगी उपवन के पास॥
मिले तुम्हे जब रुचिर धरा वह जहाँ बना मैं धूल निदान।
एक सरस प्याले की धारा वहाँ गिरा देना सुख मान !!

× × × ×

आह्वान

[११७]

अरुणशिखा की ध्वनि सुन करके बोल उठे आगन्तुक लोग।
"खोलो! खोलो!! अतिथि-भवन के द्वार, मिले मादक संयोग॥
तुम्हे विदित है हम लोगों का होगा कितना क्षणिक निवास।
गये जहाँ फिर लौट सकेंगे हम न कदापि तुम्हारे पास॥"

× × × ×

[११८]

"मैं हूँ जगत परखने वाला" तज दे यह भ्रम-पूर्ण विचार।
यहाँ मित्रता के जामे में, छिपे मिलेंगे शत्रु अपार॥
क्यों करता है मूर्ख! किसी की मादकता का यों उपहास!
अपना हृदय टटोल जहाँ है शत शत त्रुटियो का अधिवास॥

× × × ×

[११९]

जाग! जाग! ओ सोनेवाले! देख दिवाकर बन रणधीर।
गिरिशृंगों पर, दृढ़ दुर्गों पर, चला रहा किरणो के तीर॥
नभ-युद्ध-स्थल से तारों को हटा दिया है इसने प्रात।
भाग चुकी है स्वर्ग-अजिर से, उनके साथ तामसी रात॥

× × × ×

[१२०]

कुसुम कहाँ हैं ? भरे कामना की कुंजों में फंटक-जाल।
तज दो भोग रोग के सम ही यदि वांछित हो शांति-रसाल ॥
सब प्रश्नों का मूल प्रश्न है इसका धरो निरन्तर ध्यान।
हो तुम कौन ? कहाँ से आये ? क्या करते हो ? किधर पयान ?

× × × ×

[१२१]

मिट्टी की यह देह त्यागकर छोड़ तथा श्वासों के तार।
जब होकर उन्मुक्त पवन में, कर सकती वह व्योम-विहार ॥
तब क्या आत्मा को यह होगी, नहीं बड़ी लज्जा की बात।
गढ़ी पड़ी इस सड़ी देह मे बन्दी बनी रहे दिन-रात !

× × × ×

[१२२]

बन जा दीन, दीनता ही तो दीनबन्धु को प्रिय है मित्र !
अरे ! साधु कहलाकर फिर क्यों धरे राजसी साज विचित्र ?
बरबस भेजा गया यहाँ, पर अब तो कर कुछ ऐसा काम।
जिससे फिर न भोगना हो, इस जन्म-मरण का यह परिणाम ॥

× × × ×

[१२३]

उड़ा सभी जब नव-प्रभात का मायामय सुंदर छविजाल।
तभी सुन पडा अतिथि-भवन से, ऐसा कुछ वर वचन रसाल ॥

"जब सुखधाम रुचिर देवालय बना हुआ भीतर सुविशाल।
तब क्यों बाहर बैठ पुजारी ऊँघ-ऊँघ होता नतभाल ?"

× × × ×

[१२४]

क्या रक्खा है मंदिर में क्यों पूजा के षोड़श उपचार !
वृथा स्तोत्र के स्रोत बहाना जप तप के हैं वृथा विचार ॥
उसकी इच्छा पर चलता हूँ मान रहा हूँ उसको 'एक'।
मेरी मुक्ति बनी निश्चित है त्यागा जब जीवन-उत्सेक ॥

× × × ×

प्रेम
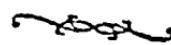
[१२५]

पुत्र-कलत्र-मोह तुम त्यागो कर दो जग के बंधन चूर्ण।
कैसे बढ़ सकते हो जब तक चूर्ण न होंगे बंधन पूर्ण ?
जग-बंधन से हीन प्रेम का, है सब ही धर्मों में मान।
जहाँ प्रेम है वहीं स्वर्ग है, इसी प्रेम में है भगवान ॥

× × × ×

[१२६]

जिसमें उपालंभ हो जिसमें रुदन और दुख का आख्यान।
मोह भले ही कहलावे वह, प्रेम न कहते उसे सुजान॥
मर जावे प्रेमी घुल घुल कर किन्तु न निकले मुँह से आह।
सच्चा प्रेम वही है जिसकी पावे अन्य न कोई थाह॥

× × × ×

[१२७]

सुखी हृदय वह है, जिसने है सहा प्रिया का अत्याचार।
सुखी वही मस्तक है जो है हुआ प्रेमिका-पथ पर प्तार॥
दुख ही जो भेजा उसने, तो कर वह ही सुख से स्वीकार।
प्रमी को सुखकर ही होता सदा प्रिया-प्रेषित उपहार॥

× × × ×

[१२८]

मिले प्रिया को गाल गुलावी नयन सलोने अधर सन्हास।
तो प्रेमी ने भी तो पाये विरह—व्यथाओं के आवास॥
ख़ाली हाथ न लौटे जग में जब हमने छोड़ा विधि-द्वार।
दुख ही सही किन्तु हमने भी पाया है कुछ तो उपहार!!

× × × ×

[१२९]

दर्द न हो तो दिल ही क्या है, प्रेम न हो तो जीवन व्यर्थ।
विरह न हो तो इस जीवन मे रहा प्रेम ही का क्या अर्थ?

विरह-व्यथा-कण्टक सह कर ही मिलता है गुलाब छविवान।
शत-शत छिद्र सहन कर कंघी पाती प्रिया-केश में स्थान॥

× × × ×

[१३०]

दुख ही है प्रेमी का गौरव, त्रुटि ही है जीवन का गर्व।
फिर क्यों पश्चात्ताप! अरे मैं "तोबा" कर न बनूँगा खर्व॥
मस्त रहूँगा मदिरा में बस, जब तक हैं इस तन में प्रान।
यह जीवन-(यह ईश-धरोहर)-लौटा दूँगा फिर सुख मान॥

× × × ×

[१३१]

सुमन न मिला बुझा लूँगा तो काँटे ही से मन की प्यास।
पर यदि काँटा भी न मिला तो क्या होगी जीवन की आस!!
हुआ और के लिये विवश वह जो था मेरा प्राणाधार।
होगा क्या उपचार कहो फिर बना वैद्य ही जब बीमार!

× × × ×

[१३२]

इस वसंत-उत्सव मे यह है कौन चंद्रमद-मर्दक रूप।
विधि की रचना व्यर्थ हुई बस लख इसका यह रूप अनूप॥
लोग सजाते हे शरीर को देख देख उत्सव के साज।
इसने तो अपने शरीर से सजा दिया उत्सव को आज॥

× × × ×

[१३३]

दिया प्रकृति ने प्रेम-विवश हो तुम्हे व्योम-सिंहासन प्रात।
पाए उससे अश्व दिवाकर ! तुमने कनक-चरण अवदात॥
इस अवनी पर ज्योंही पड़ती उन घोड़ो की पहिली टाप।
सोना तुरत बरस पड़ता है बिछ जाती है चाँदी आप॥

× × × ×

[१३४]

मंजुल वाणी से कहता है खिलकर यह गुलाब का फूल।
हँसता हुआ प्रकट होता हूँ मैं जग में उपवन के कूल॥
और प्रगट होकर झट अपनी थैली रुचिर रेशमी खोल।
उपवन में बिखरा देता हूँ सुंदरता की निधि अनमोल॥

× × × ×

[१३५]

विकसित होकर बोला पाटल, "मैं ही हूँ प्रेमी मंसूर।
मेरे मानिक से मुखपर है मढ़ा हुआ सोना भरपूर"॥
मैने कहा, "तभी मानूँगा देखूँ जब कुछ चिन्ह विशेष"।
उसने कहा, "देख लो मेरा शीर्ण-कलेवर शोणितवेष"॥
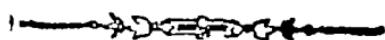
रहस्य

[१३६]

कभी धर्म-पथ पर आता हूँ कभी किया करता मधु-पान।
कभी मस्त बनता हूँ कह कर "हैं बस दयावान भगवान॥"
अद्भुत मेरी चित्त-वृत्ति है अद्भुत है मेरा संवाद।
सब मे हूँ सबसे न्यारा हूँ, जो हूँ सो हूँ, व्यर्थ विवाद॥

× × × ×

[१३७]

प्रमुद सभी मिट से जाते हैं बुद्धि-सखी जब रहती साथ।
छिप जाता है ज्ञान, पकड़ता हूँ जब मादकता का हाथ॥
इन दोनों के बीच गई है एक मृदुल जीवन की राह।
उसी अलक्षित रमणी पर बस, मेरा है अनुराग अथाह॥

× × × ×

[१३८]

इस उज्ज्वल जीवन को क्या तुम खो दोगे तममें चुपचाप?
सफल बना लो इसको सुख से पालो सरस प्रमोद कलाप॥
एक सूक्ष्म रेखा ही करती सत्य और मिथ्या का भाग।
कहो, कहाँ किस ओर रखोगे अपने जीवन का अनुराग!

[१३९]

एक सूक्ष्म रेखा ही करती सत्य और मिथ्या का भाग।
और अकार अर्धमात्रा का है उस रेखा पर अनुराग॥
यदि वह अ अ् आ सीख सकोगे तो मणिमय कोषों के संग।
स्वामी को भी पा सकते हो अनायास ही सहित उमंग॥

× × × ×

[१४०]

सब रूपों में छिपा हुआ है वही दुःख–भंजन जगदीश।
वही बना है जड़, वह चेतन, वही रंक, वह है अवनीश॥
राजा-रंक और जड़–चेतन होंगे विकृत विनष्ट निदान।
किन्तु रहेगा वर्त्तमान ही वह त्रिकाल में एक समान॥

× × × ×

[१४१]

जग-नाटक के सूत्रधार का कैसा है यह क्रिया-कलाप!
कवि है स्वयं, स्वयं अभिनेता, दर्शक भी बनता है आप॥
होता है कुछ काल यहाँ पर, अमर काल का मनोविनोद!
छिप जाता है साज सकल फिर, उस नेपथ्य अलख की गोद!

× × × ×

[१४२]

अविश्वास, भय और दुःख के दानव फैला कर तम घोर।
मग्न किया करते आत्मा को व्यथा-युक्त जर्जर बरजोर॥

इन्हें उड़ाता है बस वह ही, लेकर आँधी रूप कृपाण।
जो है दीन जनों का पालक, जो है अखिल विश्व का प्राण ॥

हे हरि !

[१४३]

महाशून्य से चेतन बुद्‌बुद क्यों प्रगटाया हे जगधाम !
प्रगटाया तो विविध सुखों पर रक्खा क्यों बंधन उद्दाम ॥
बंध रखा तो उनके प्रति फिर क्यों रच दिया उपेक्षा-ज्ञान।
रचा उपेक्षावालों के हित क्यों फिर ऐसा दंड-विधान?

× × × ×

[१४४]

विवश जीव को दिया तुम्हीं ने पीतल का सा जीवन-दान।
माँग रहे हो अब उससे तुम अति संशुद्ध सुवर्ण महान ॥
कर्ज चुकावेगा वह कैसा, लिया जीव ने जब न उधार।
यह कैसा देना लेना है, यह कैसा अद्‌भुत व्यापार !!

× × × ×

[१४५]

मैं हूँ पतित, कहाँ हैं तेरे वे उद्धारक बाहु विशाल।
मेरे मन मे भरा अँधेरा, दिखला दे सुप्रकाश रसाल॥
अपनी करनी ही से यदि मैं पाऊँगा वह स्वर्ग ललाम।
तो इस लेन-देन में फिर है तेरी करुणा का क्या काम!

× × × ×

[१४६]

मेरे पथ पर बिछा रखे है तुमने ही तो कंटक जाल।
जान गया सब मैं, विरचे हैं तुमने ही ये गर्त्त विशाल॥
मुझे फँसाकर दुश्चरितों मे, गर्त्तों बीच ढकेल सरोप।
क्या है समुचित तुम्हे, पाप के मत्थे मढ़ना सारा दोष?

× × × ×

[१४७]

तुमने मादक सुमन-पुंज से सजा दिया जग का उद्यान।
राकाशशि का रास रचाया तुमने ही सौंदर्य-निधान!
इतना करके अब कहते हो "बस न फिराना दृग इस ओर"।
यह तो सच सच तुम्हीं दयानिधि! क्या यह अत्याचार न घोर?

× × × ×

[१४८]

विषम धरा पर तुमने भेजे निर्बल मनुजो के समुदाय।
तथा पुण्य के साथ तुम्हीं ने रचा पाप को भी तो हाय!

हुए पतित जब वे तब उनको देकर विमल क्षमा का दान।
हर लो वह अनुतापकारिणी सकल कालिमा हे भगवान॥

× × × ×

[१४९]

दया करो इस मलिन हृदय पर जिसमे भरा हुआ संताप।
दया करो मेरे मानस पर, जो है बद्ध आप-ही-आप॥
दया करो इन पैरो पर जो बढ़ते पानभूमि की ओर।
दया करो इन हाथो पर प्रभु! जिनमे है प्याले का छोर॥

× × × ×

[१५०]

ज्ञान-सिंधु मे गहरे पैठा फिर भी मिली न तेरी थाह।
ज्ञानसिद्धि बस इसमे ही है, हो तेरी करुणा की चाह॥
रजकण मे मैं मिल जाऊँगा लेकर तेरा प्रेम महान।
फिर तेरी ही करुणा आकर कर देगी मेरा उत्थान॥

(1)

Wake! For the Sun, Who scatter'd into flight
The Stars before him from the Field of Night,
Drives Night along with them from Heav'n, and strikes
The Sultan's Turret with a Shaft of Light. [119]

(2)

Before the Phantom of False Morning died,
Methought a Voice within the Tavern cried,
"When all the Temple is prepared within,
Why nods the drowsy Worshiper outside?' [123]

(3)

And, as the Cock crew, those who stood before
The Tavern shouted—"Open then the Door!
You know how little while we have to stay,
And, once departed, may return no more." [117]

(4)

Now the New Year reviving old Desires,
The thoughtful Soul to Solitude retires,
Where the WHITE HAND OF MOSES on the Bough
Puts out, and Jesus from the Ground suspires. [114]

(5)

Iram indeed is gone with all his Rose,
And Jamshyd's Sev'n-ring'd Cup, where no one knows,
But still a Ruby kindles in the Vine,
And many a Garden by the Water blows. [94]

(6)

And David's lips are lockt, but in divine
High-piping Pehlevi, with "Wine! Wine! Wine!
Red Wine!"—the Nightingale cries to the Rose
That sallow cheek of hers t' incarnadine. [97]

(7)

Come, fill the Cup, and in the fire of Spring
Your Winter-garment of Repentance fling,
The Bird of Time has but a little way
To flutter—and the Bird is on the Wing. [98]

(8)

Whether at Naishapur or at Babylon,
Whether the Cup with sweet or bitter run,
The Wine of Life keeps oozing drop by drop,
The Leaves of life keep falling one by one. [9]

(9)

Each Morn a thousand Roses brings, you say,
Yes, but where leaves the Rose of Yesterday?
And this first summer month that brings the Rose
Shall take Jamshyd and Kaikobad away. [78]

(10)

Well, let it take them! What have we to do
With Kaikobad the Great, or Kaikhosru?
Let Zal and Rustum bluster as they will,
tim call to Supper—heed not you. [79]

(11)

With me along the strip of Herbage strown
That just divides the desert from the sown,
Where name of Slave and Sultan is forgot—
And Peace to Mahmud on his golden Throne! [80]

(12)

A Book of Verses underneath the Bough,
A Jug of Wine, a Loaf of Bread—and Thou
Beside me singing in the Wilderness—
Oh, Wilderness were Paradise enow! [81]

(13)

Some for the Glories of This World, and some
Sigh for the Prophet's Paradise to come;
Ah, take the Cash, and let the Credit go,
Nor heed the rumble of a distant Drum! [67]

(14)

Look to the blowing Rose about us—"Lo,
Laughing," she says, "into the world I blow,
At once the silken tassel of my Purse
Tear, and its Treasure on the Garden throw." [134]

(15)

And those who husbanded the Golden grain,
And those who flung it to the winds like Rain,
Alike to no such aureate Earth are turn'd
As, buried once, Men want dug up again. [3]

(16)

The Worldly Hope men set their Hearts upon
Turns Ashes—or it prospers, and anon,
Like Snow upon the Desert's dusty Face,
Lighting a little hour or two—is gone [68]

(17)

Think, in this batter'd Caravanserai
Whose Portals are alternate Night and Day,
How Sultan after Sultan with his Pomp
Abode his destined Hour, and went his way. [8]

(18)

They say the Lion and Lizard keep
The Courts where Jamshyd gloried and drank deep.
And Bahram, the great Hunter—the Wild Ass
Stamps o'er his Head, but cannot break his Sleep. [14]

(19)

I sometimes think that never blows so red
The Rose as where some buried Cæsar bled,
That every Hyacinth the Garden wears
Dropt in her Lap from some once lovely Head. [20]

(20)

And this reviving Herb whose tender Green
Fledges the River-lip on which we lean—
Ah, lean upon it lightly! for who knows
From what once lovely Lip it springs unseen! [18]

(21)

Ah, my Beloved, fill the Cup that clears
To-DAY of past Regrets and future Fears
To-morrow!—Why, To-morrow I may be
Myself with Yesterday's Sev'n thousand Years. [106

(22)

For some we loved, the loveliest and the best
That from his Vintage rolling Time hath prest,
Have drunk their Cup a Round or two before,
And one by one crept silently to rest. [4

(23)

And we, that now make merry in the Room
They left, and Summer dresses in new bloom,
Ourselves must we beneath the Couch of Earth
Descend–ourselves to make a Couch–for whom? [5

(24)

Ah, make the most of what we yet may spend,
Before we too into the Dust descend,
Dust into Dust, and under Dust to lie,
Sans Wine, sans Song, sans Singer, and–sans End! [7

(25)

Alike for those who for To-DAY prepare,
And those that after some To-MORROW stare,
A Muezzin from the Tower of Darkness cries,
"Fools! your Reward is neither Here nor There" [6

(26)

Why, all the Saints and Sages who discuss'd
Of the Two Worlds so wisely—they are thrust
Like foolish Prophets forth, their Words to Scorn
Are scatter'd, and their Mouths are stopt with Dust. [60]

(27)

Myself when young did eagerly frequent
Doctor and Saint, and heard great argument
About it and about but evermore
Came out by the same door where in I went [82]

(28)

With them the seed of Wisdom did I sow,
And with mine own hand wrought to make it grow;
And this was all the Harvest that I reap'd—
"I came like Water, and like Wind I go." [83]

(29)

nto this Universe, and Why not knowing
Nor Whence, like Water willy-nilly flowing;
And out of it, as Wind along the Waste,
know not Whither, willy-nilly blowing. [84]

(30)

What, without asking, hither hurried Whence ?
And, without asking, Whither hurried hence !
Oh, many a Cup of this forbidden Wine
Must drown the memory of that insolence ! [85]

(31)

Up from Earth's Centre through the Seventh Gate
I rose, and on the Throne of Saturn sate,
And many a Knot unravel'd by the Road,
But not the Master-knot of Human Fate [48

(32)

There was the Door to which I found no Key;
There was the Veil through which I might not see,
Some little talk awhile of Me and Thee
There was—and then no more of Thee and Me. [49

(33)

Earth could not answer; nor the Seas that mourn
In flowing Purple, of their Lord forlorn,
Nor rolling Heaven, with all his Signs reveal'd
And hidden by the sleeve of Night and Morn. [50

(34)

Then of the THEE IN ME who works behind
The Veil, I lifted up my hands to find
A lamp amid the Darkness; and I heard,
As from Without—"THE ME WITHIN THEE BLIND!" [5

(35)

Then to the Lip of this poor earthen Urn
I lean'd, the Secret of my Life to learn
And Lip to Lip it murmur'd—"While you live,
Drink! for, once dead, you never shall return." [5

(36)

think the Vessel, that with fugitive
rticulation Answer'd, once did live,
nd drink, and Ah! the passive Lip I kiss'd,
low many Kisses might it take—and give! [22]

(37)

or I remember stopping by the way
o watch a Potter thumping his wet Clay
nd with its all-obliterated Tongue
murmur'd—"Gently, Brother, gently, pray!" [21]

(38)

nd has not such a Story from of Old
own Man's successive generations roll'd
f such a clod of saturated Earth
ast by the Maker into Human mould? [23]

(39)

nd not a drop that from our Cups we throw
or Earth to drink of, but may steal below
o quench the fire of Anguish in some Eye
here hidden—far beneath, and long ago. [19]

(40)

s then the Tulip for her morning sup
f Heav'nly Vintage from the soil looks up,
o you devoutly do the like, till Heav'n
Earth invert you—like an empty Cup. [99]

(41)

Perplext no more with Human or Divine,
To-morrow's tangle to the winds resign,
And lose your fingers in the tresses of
The Cypress-slender Minister of Wine. [72]

(42)

And if the Wine you drink, the Lip you press,
End in what All begins and ends in—Yes;
Think then you are TO-DAY what YESTERDAY
You were—TO-MORROW you shall not be less. [71]

(43)

So when the Angel of the darker Drink
At last shall find you by the river-brink,
And, offering his Cup, invite your Soul
Forth to your Lips to quaff–you shall not shrink.[108]

(44)

Why, if the Soul can fling the Dust aside,
And naked on the Air of Heaven ride,
Were't not a Shame—were't not a Shame for him
In this clay carcase crippled to abide ? [121]

(45)

Tis but a Tent where takes his one day's rest
A Sultan to the realm of Death addrest,
The Sultan rises, and the dark Ferrash
Strikes, and prepares it for another Guest.

(46)

And fear not lest Existence closing your
Account, and mine, should know the like no more,
The Eternal Saki from that Bowl has pour'd
Millions of Bubbles like us, and will pour. [12]

(47)

When you and I behind the Veil are past,
Oh, but the long, long while the World shall last,
Which of our Coming and Departure heeds
As the Sea's self should heed a pebble-cast [11]

(48)

A Moment's Halt—a momentary taste
Of Being from the Well amid the Waste—
And Lo!—the phantom Caravan has reach'd
The Nothing it set out from—Oh, make haste! [6]

(49)

Would you that spangle of Existence spend
About the Secret—quick about it, Friend!
A Hair perhaps divides the False and True—
And upon what, prithee, may life depend? [138]

(50)

A Hair perhaps divides the False and True,
Yes, and a single Alif were the clue—
Could you but find it—to the Treasure-house,
And peradventure to The Master too, [139]

(51)

Whose secret Presence, through Creation's veins
Running Quicksilver-like eludes your pains,
Taking all shapes from Mah to Mahi, and
They change and perish all—but He remains, [140]

(52)

A moment guess'd— then back behind the Fold
Immerst of Darkness round the Drama roll'd
Which, for the Pastime of Eternity,
He doth Himself contrive, enact, behold [141]

(53)

But if in vain, down on the stubborn floor
Of Earth, and up to Heav'n's unopening Door,
You gaze To-day, while You are You—how then
To-morrow, when You shall be You no more ? [74]

(54)

Waste not your Hour, nor in the vain pursuit
Of This and That endeavour and dispute,
Better be jocund with the fruitful Grape
Than sadden after none, or bitter, Fruit. [73]

(55)

You know, my Friends, with what a brave Carouse
I made a Second Marriage in my house;
Divorced old barren Reason from my Bed,
And took the Daughter of the Vine to Spouse.

(56)

For "Is" and "Is-NOT" though with Rule and Line,
And "UP-AND-DOWN" by Logic I define,
Of all that one should care to fathom, I
Was never deep in anything but—Wine [89]

(57)

Ah, but my Computations, People say,
Reduced the Year to better reckoning ?—Nay,
'Twas only striking from the Calender
Unborn To-morrow, and dead Yesterday. [76]

(58)

And lately, by the Tavern Door agape,
Came shining through the Dusk an Angel Shape
Bearing a Vessel on his Shoulder, and
He bid me taste of it, and 'twas—the Grape ! [104]

(59)

The Grape that can with Logic absolute
The Two-and-Seventy jarring Sects confute
The sovereign Alchemist that in a trice
Life's leaden metal into Gold transmute [86]

(60)

The mighty Mahmud, Allah-breathing Lord,
That all the misbelieving and black Horde
Of Fears and Sorrows that infest the Soul
[illegible]tters before him with his whirlwind Sword [142]

(61)

Why, be this Juice the growth of God, who dare
Blaspheme the twisted tendril as a Snare?
A Blessing, we should use it, should we not?
And if a Curse—why, then, Who set it there? [87]

(62)

I must abjure the Balm of Life, I must,
Scared by some After-reckoning ta'en on trust,
Or lured with Hope of some Diviner Drink,
To fill the Cup—when crumbled into Dust! [100]

(63)

Oh, threats of Hell and Hopes of Paradise!
One thing at least is certain—This Life flies,
One thing is certain and the rest is Lies,
The Flower that once has blown for ever dies. [57]

(64)

Strange, is it not? that of the myriads who
Before us pass'd the door of Darkness through,
Not one returns to tell us of the Road,
Which to discover we must travel too. [54]

(65)

The Revelations of Devout and Learn'd
Who rose before us, and as Prophets burn'd,
Are all but Stories, which awoke from Sleep
They told their comrades, and to Sleep return'd. [6]

(66)

I sent my Soul through the Invisible,
Some letter of that After-life to spell
And by and by my Soul return'd to me,
And answer'd "I Myself am Heav'n and Hell": [55]

(67)

Heav'n but the Vision of fulfill'd Desire,
And Hell the Shadow from a Soul on fire,
Cast on the Darkness into which Ourselves,
So late emerged from, shall so soon expire. [56]

(68)

We are no other than a moving row
Of Magic Shadow-shapes that come and go
Round with the Sun-illumined Lantern held
In Midnight by the Master of the Show, [43]

(69)

But helpless Pieces of the Game He plays
Upon this Chequer-board of Nights and Days,
Hither and thither moves, and checks, and slays,
And one by one back in the Closet lays [44]

(70)

The Ball no question makes of Ayes and Noes,
But Here or There as strikes the Player goes,
And He that toss'd you down into the Field,
He knows about it all—He knows—HE knows! [45]

(71)

The Moving Finger writes, and, having writ,
Moves on nor all your Piety nor Wit
Shall lure it back to cancel half a Line,
Nor all your Tears wash out a Word of it. [42]

(72)

And that inverted Bowl they call the Sky,
Whereunder crawling coop'd we live and die,
Lift not your hands to It for help—for It
As impotently moves as you or I. [47]

(73)

With Earth's first Clay They did the Last Man knead,
And there of the Last Harvest sow'd the Seed
And the first Morning of Creation wrote
What the Last Dawn of Reckoning shall read. [41]

(74)

YESTERDAY This Day's Madness did prepare,
To-morrow's Silence, Triumph, or Despair
Drink! for you know not whence you came, nor why
Drink! for you know not why you go, nor where. [53]

(75)

I tell you this—When, started from the Goal,
Over the flaming shoulders of the Foal
Of Heav'n Parwin and Mushtari they flung,
In my predestin'd Plot of Dust and Soul [46

(76)

The Vine had struck a fibre· which about
If clings my being—let the Dervish flout;
Of my Base metal may be filed a Key,
That shall unlock the Door he howls without [91]

(77)

And this I know whether the one True Light
Kindle to Love, or Wrath-consume me quite,
One Flash of It within the Tavern caught
Better than in the Temple lost outright. [90]

(78)

What! out of senseless Nothing to provoke
A conscious Something to resent the yoke
Of unpermitted Pleasure, under pain
Of Everlasting Penalties, if broke! [143]

(79)

What! from his helpless Creature be repaid
Pure Gold for what he lent him dross-allay'd-
Sue for a Debt he never did contract,
And cannot answer—Oh. the sorry trade! [144]

(80)

Oh Thou, who didst with pitfall and with gin
Beset the Road I was to wander in,
Thou wilt not with Predestined Evil round
Enmesh, and then impute my Fall to Sin! [146]

(81)

Oh Thou, who Man of baser Earth didst make,
And ev'n with Paradise devise the Snake
For all the Sin wherewith the Face of Man
Is blacken'd–Man's forgiveness give–and take! [148]

(82)

As under cover of departing Day
Slunk hunger-stricken Ramazan away,
Once more within the Potter's house alone
I Stood, surrounded by the Shapes Of Clay. [32]

(83)

Shapes of all Sorts and Sizes, great and small,
That stood along the floor and by the wall,
And some loquacious Vessels were; and some
Listen'd perhaps, but never talk'd at all. [33

(84)

Said one among them—"Surely not in vain
My substance of the common Earth was ta'en
And to this Figure moulded, to be broke,
Or trampled back to shapeless Earth again." [34

(85)

Then said a Second—"Ne'er a peevish Boy
Would break the Bowl from which he drank in joy,
And He that with His hand the Vessel made
Will surely not in after Wrath destroy." [35

(85)

After a momentary silence spake
Some Vessel of a more ungainly Make
"They sneer at me for leaning all awry
What! did the Hand then of the Potter shake?" [36]

(87)

Whereat some one of the loquacious Lot—
I think a Sufi pipkin—waxing hot—
"All this of Pot and Potter—Tell me then,
Who is the Potter, pray, and who the Pot ? [39]

(88)

"Why," said another, "Some there are who tell
Of one who threatens he will toss to Hell
The luckless Pots he marr'd in making—Pish!
He's a Good Fellow, and 'twill all be well " [37]

(89)

"Well," murmur'd one, "Let whoso make or buy,
My Clay with long Oblivion is gone dry
But fill me with the old familiar Juice,
Methinks I might recover by and by." [38]

(90)

So while the Vessels one by one were speaking,
The little Moon look'd in that all were seeking
And then they jogg'd each other, "Brother! Brother!
Now for the Potter's shoulder-knot acreaking!" [40]

(91)

Ah, with the Grape my fading Life provide,
And wash the Body whence the Life has died,
And lay me, shrouded in the living Leaf,
By some not unfrequented Garden-side. [109]

(92)

That ev'n my buried Ashes such a snare
Of Vintage shall fling up into the Air
As not a True-believer passing by
But shall be overtaken unaware. [110]

(93)

Indeed, the Idols I have loved so long,
Have done my credit in this World much wrong
Have drown'd my Glory in a shallow Cup,
And sold my Reputation for a Song. [29]

(94)

Indeed, indeed Repentance oft before
I swore—but was I sober when I swore?
And then and then came Spring, and Rose-in-hand
My thread-bare Penitence apieces tore. [28]

(95)

And much as Wine has play'd the Infide[illegible],
And robb'd me of my Robe of Honour—[illegible],
I wonder often what the Vintners [illegible]
One half so precious as the stuff the[illegible]

(96)

Yet Ah, that Spring should vanish with the Rose!
That Youth's sweet-scented manuscript should close!
The Nightingale that in the branches sang,
Ah whence and whither flown again, who knows! [26]

(97)

Would but the Desert of the Fountain yield
One glimpse—if dimly, yet indeed, reveal'd,
To which the fainting Traveller might spring,
As springs the trampled herbage of the field! [111]

(98)

Would but some winged Angel ere too late
Arrest the yet unfolded Roll of Fate,
And make the stern Recorder otherwise
Enregister, or quite Obliterate! [112]

(99)

Ah, Love! could you and I with Him conspire
To grasp this sorry Scheme of Things entire,
Would not we shatter it to bits—and then
Re-mould it nearer to the Heart's Desire! [113]

(100)

Yon rising Moon that looks for us again—
How oft hereafter will she wax and wane,
How oft hereafter rising look for us
Through this same Garden—and for one in vain! [115]

(101)

And when like her, oh Saki, you shall pass
Among the Guests Star-scatter'd on the Grass,
And in your joyous errand reach the spot
Where I made One—turn down an empty Glass! [116]

TAMAM

अमेरिका की स्वाधीनता का इतिहास

लेखक—श्री देवकीनंदन विभव एम० ए० (शिकागो)

भूमिका-लेखक—'आज'-संपादक श्री बाबूराव विष्णु पड़ारकर

अमेरिका का स्वाधीनता-संग्राम हमारे लिये एक जीता-जागता प्रमाण है। कारण, अमरीका और भारतवर्ष की क्रांतियों की जड़ में मूल कारण एक है। भारतवर्ष की तरह अमरीका भी इङ्गलैंड की व्यावसायिक 'लूटमार-नीति' और स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये धीरे-धीरे विवश कर दिया गया था। इस विद्रोह के प्रारंभिक और अंतिम रूप का यदि मिलान किया जाय, तो हमको यह अनुभव हुए बगैर न रहेगा कि इङ्गलैंड के अदूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने अपनी शान और झूठी प्रतिष्ठा के लिये राज्य-भक्त और शान्ति-प्रिय प्रजा को किस तरह विद्रोही और इङ्गलैंड का दुश्मन बना दिया और किस तरह उनकी छोटी-छोटी माँगों के ठुकराए जाने पर पूर्ण स्वाधीनता का रूप धारण कर लिया। भारतीय कांग्रेस तथा अन्य संस्थाओं के प्रार्थना-पत्रों की तरह जार्ज तृतीय और उसका मन्त्रि-मंडल अमरीका के भी प्रार्थना-पत्रों को रद्दी की टोकरी में डाल देते थे। [illegible] लोगों का [illegible] एडिन और विलिंगटन के [illegible] की तरह [illegible] स्वेच्छाचारी कानून पास करवा दिया जाता था।

अंगरेज व्यवसायियों ने अमरीका के [illegible]

अमेरिका की स्वाधीनता का इतिहास

लेखक—श्री देवकीनंदन विभव एम० ए० (शिकागो)

भूमिका-लेखक—'आज'-संपादक श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर

अमेरिका का स्वाधीनता-संग्राम हमारे लिये एक जीता-जागता प्रमाण है। कारण, अमरीका और भारतवर्ष की क्रांतियों की जड़ में मूल कारण एक है। भारतवर्ष की तरह अमरीका भी इंगलैंड की व्यावसायिक 'लूटमार-नीति' और स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये धीरे-धीरे विवश कर दिया गया था। इस विद्रोह के प्रारंभिक और अंतिम रूप का यदि मिलान किया जाय, तो हमको यह अनुभव हुए बगैर न रहेगा कि इंगलैंड के अदूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने अपनी शान और झूठी प्रतिष्ठा के लिये राज्य-भक्त और शांति-प्रिय प्रजा को किस तरह विद्रोही और इंगलैंड का दुश्मन बना दिया और किस तरह उनकी छोटी-छोटी माँगों के ठुकराए जाने पर पूर्ण स्वाधीनता का रूप धारण कर लिया। भारतीय कांग्रेस तथा अन्य संस्थाओं के प्रार्थना-पत्रों की तरह जार्ज तृतीय और उनका मंत्रि-मंडल अमरीका के भी प्रार्थना-पत्रों को रद्दी की टोकरी में डाल देते थे। राष्ट्रीय माँगों का उत्तर लार्ड इर्विन और विलिंगटन के आर्डिनेंसों की तरह नए-नए दमनकारी क़ानून पास करके दिया जाता था।

अंगरेज व्यवसायियों ने अमरीका में एक जाल-सा

अमेरिका की स्वाधीनता का इतिहास

लेखक—श्री देवकीनंदन विभव एम० ए० ([illegible])

भूमिका-लेखक—'आज'-संपादक श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर

अमेरिका का स्वाधीनता-संग्राम हमारे लिये एक जीता-जागता प्रमाण है। कारण, अमरीका और भारतवर्ष की क्रांतियों की तह मे मूल कारण एक है। भारतवर्ष की तरह अमरीका भी इङ्गलैंड की व्यावसायिक 'लूटमार-नीति' और स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये धीरे-धीरे विवश कर दिया गया था। इस विद्रोह के प्रारंभिक और अंतिम रूप का यदि मिलान किया जाय तो हमको यह अनुभव हुए बगैर न रहेगा कि इङ्गलैंड के अदूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने अपनी शान और झूठी प्रतिष्ठा के लिये राजभक्त और शांति-प्रिय प्रजा को किस तरह विद्रोही और इङ्गलैंड का दुश्मन बना दिया और किस तरह उनकी छोटी-छोटी माँगों के ठुकराए जाने पर पूर्ण स्वाधीनता का रूप धारण कर लिया। भारतीय कांग्रेस तथा अन्य संस्थाओं के प्रार्थना-पत्रों की तरह जार्ज तृतीय और उनका मंत्रि-मंडल अमरीका के भी प्रार्थना-पत्रों को रद्दी की टोकरी में डाल देते थे। राष्ट्रीय माँगों का उत्तर लार्ड इर्विन और विलिंगटन के आर्डिनेंसों की तरह नए-नए दमनकारी क़ानून पास करके दिया जाता था।

अंगरेज व्यवसायियों ने अमरीका मे एक जाल सा पूर दिया था

और इङ्गलैंड ने अपने हित के लिये अमरीका मे ऐसे-ऐसे क़ानून बना दिए थे, जिससे वहाँ किसी तरह उद्योग-धंधो का जन्म ही नहीं हो सकता था। अमरीकन कॉंग्रेस भी गैर कानूनी संस्था करार दी गई थी, जलूस निकालना और सभाएँ करना बंद कर दिया गया था। शोलापुर और पेशावर की तरह अमरीका मे निरपराध जनता पर गोली चलाई गई थी।

घोर दमन होने पर भी वहाँ अंगरेजो के व्यवसाय की रक्षा न की जा सकी। भारत ही की तरह अमरीकनो ने भी क्षुब्ध होकर भीषण वहिष्कार आंदोलन प्रारंभ कर दिया था। इङ्गलैंड की बनी हुई हर-एक चीज का वहिष्कार कर दिया गया, स्त्रियो ने चर्खा कात-कात कर देशकी कपडे की आवश्यकता को पूरी की। चाय, खाने के पदार्थ, फ़ैंसी चीजें जो अंगरेज़ व्यवसायी अमरीका पहुँचाते थे, वहाँ उनको खरीदनेवाला कोई नसीब न हुआ। इस बहिष्कार का प्रभाव ऐसा पड़ा कि थोड़े ही समय मे इङ्गलैंड को तीस लाख पौंड की हानी उठानी पड़ी और इङ्गलैंड के बहुत-से व्यापारियों और कारखानो में ताले पड़ गए।

भारतवर्ष की तरह अमरीका ने अहिंसा का व्रत नहीं लिया था। इसलिये ब्रिटिश पार्लमेंट के स्वेच्छाचार और अन्यायो के कारण जो आंदोलन पहले केवल बहिष्कार, सभाओ और जलूसो तक ही परिमित था, धीरे धीरे रक्तपात और नर-संहार में परिणत हो गया। जलियानावाला बाग हत्याकाड की तरह लेक्सिंगटन हत्याकाड से अमरीकनो का खून एकदम उबल पड़ा और उन थोड़े से व्यक्तियो

क रक्त ने आगे इतिहास के वे पृष्ठ रंगे, जो इङ्गलैंड और अमरीका के सबसे कडुए अंग हो गए।

उपरोक्त घटनाओं को यदि बराबर मिलान कर देखा जायगा तो स्पष्ट विदित हुए बिना न रहेगा कि अमरीका की क्रांति की तरह भारत भी क्रांतिकारी ही हो रहा है। संभव है यदि महात्मा गाँधी के द्वारा संचालित आंदोलन दब गया, तो अमरीका की रक्त-क्रांति भी यहाँ हो जाय। ऐसे रोमांचकारी इतिहास को प्रत्येक स्वराज्य-प्रेमी को अवश्य मँगाकर पढ़ना चाहिए। पुस्तक का मूल्य केवल २) रक्खा गया है।

सम्मेलन ने मध्यमा में इसे पाठ्य-ग्रंथ की तरह स्थान भी दिया है।

कुछ सम्मतियाँ

श्रीजवाहरलाल नेहरू—प्रत्येक राष्ट्र-प्रेमी को इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए।

श्रीपुरुषोत्तमदास टंडन—लेखक ने अच्छे मौके पर पुस्तक तैयार की है।

लीडर—The writer is to be congratulated on bringing out at an opportune time a book on the history of American independence. Not only it gives a vivid description of the stuggle that the Americans had to go through for the emancipation of their country, but it shows the great similarity that exists between the American movement and the present Indian movement. In the eighteenth century, the American Congress was also declared unlawful and the processions were banned. Americans too boycotted foreign goods and provided themselves with cloth by spinning on the Charkha. The only difference between the two movements is that while the Americans adopted violent means to achieve their ends, the Indians have taken to non-violent means.